की
विचारधारा

विवेकानन्द का हिन्दुत्व

वैदिक आस्था के अनुसार परमात्मा से मनुष्य का सीधा सम्बन्ध है। मनुष्य और परमात्मा के बीच में कोई बिचौलिया नहीं हो सकता—न राम, न कृष्ण, न बुद्ध, न ईसा, न मूसा, न मुहम्मद और न कोई और। अवतारवाद या पैगम्बरवाद ने मानव जाति को विघटित करके सम्प्रदायवाद की नींव डाली है।

हमारे आधुनिक युग के चिन्तकों में स्वामी विवेकानन्द का स्थान ऊंचा है। उन्होंने अमरीका जाकर भारत की मान मर्यादा की रक्षा में अच्छा योग दिया। सन् १९२५ में महाराष्ट्र के एक प्रतिभाशाली विद्वान् डाक्टर हैडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना की, राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से गुरुगोलवलकर जी के समय में संघ का रूप निखरा और संघ गौरवान्वित हुआ। यह सांस्कृतिक संस्था धीरे-धीरे रूढ़िवादियों की पोषक बन गई। कालान्तर में हिन्दुत्ववादियों ने विवेकानन्द का नाम खोज निकाला।

विवेकानन्द के अनेक विचार उदार और प्रशस्त थे। पर वह अपने को अवतारवाद, मूर्ति पूजा तथा अन्यान्य रूढ़ियों से मुक्त न कर पाए। फलतः वह भारतीयों को मुसलमान या ईसाई बनने से न रोक पाए। वस्तुतः उनके सामने भारतीयों का ईसाई हो जाना कोई समस्या न थी। आज उनके प्रिय देश अमरीका के षडयंत्र से इस देश के अनेक प्रांचलों में भारतीयों को तेजी से ईसाई बनाया जा रहा है। विवेकानन्द के विचार भारतीयों को ईसाई होने से नहीं रोक सकते। इतना ही नहीं, यदि विवेकानन्द की विचारधारा रही तो भारतीयों का ईसाई होना बुरा नहीं समझा जायेगा, श्रेयस्कर माना जायेगा। स्वामी विवेकानन्द की मान्यता है—

यह मेरी कल्पना है कि वही (ईश्वर) बुद्ध-ईसा हुए ! बुद्ध ने भविष्यवाणी की कि मैं पांच सौ वर्षों में पुनः आऊंगा। पांच सौ वर्ष बाद ईसा आये। समस्त मानव प्रकृति की ये दो ज्योतियां हैं। दो मनुष्य हुए हैं। बुद्ध और ईसा। यह दो विराट थे, महान दिग्गज व्यक्तित्व, दो ईश्वर। समस्त संसार को वे आपस में बांटे हुए हैं। संसार मे जहां कहीं भी किंचित ज्ञान है, लोग बुद्ध अथवा ईसा के सामने सिर झुकाते हैं। उनके सदृश और अधिक व्यक्तियों का उत्पन्न होना कठिन है। पर मुझे विश्वास है कि वे आयेंगे। पांच सौ वर्ष बाद मुहम्मद आये। कुछ हजार वर्षों में ईसा और बुद्ध जैसे व्यक्तियों का जन्म लेना एक बड़ी बात है। क्या ऐसे दो पर्याप्त नहीं हैं ? ईसा और बुद्ध ईश्वर थे, दूसरे सब पैगम्बर थे—(दशम खण्ड पृष्ठ ४०-४१)।

कहा जाता है कि शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म को भारत से बाहर निकाल दिया और आस्तिक धर्म की पुनः स्थापना की। महात्मा बुद्ध (अर्थात् वह बुद्ध जो ईश्वर थे) को भी मानिये और उनके धर्म को देश से बाहर निकाल देने वाले शंकराचार्य को भी, यह कैसे हो सकता है। विश्व हिन्दू परिषद् वाले स्वामी शंकराचार्य का गुणगान इसलिए करते हैं कि उन्होंने भारत को बुद्ध के प्रभाव से बचाया। वे ही बरमा में बुद्ध की मूर्तियों के सामने नत-मस्तक होते हैं। यह हिन्दुत्व की विडम्बना है।

यदि स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में बुद्ध और ईसा दोनों ईश्वर हैं तो भारत में ईसाई धर्म के फैलने पर आपत्ति नहीं होनी चाहिए। पूर्वोत्तर भारत में ईसाइयत के प्रवेश का स्वागत करना चाहिए।

हजरत मुहम्मद भी मनुष्य थे और ईसा मसीह भी मनुष्य थे। राम कृष्ण और बुद्ध भी मनुष्य थे। परमात्मा न अवतार लेता है, न अपने इकलौते बेटे को भेजता है और न किसी ऐसे पैगम्बर को जिसका नाम ईश्वर के साथ जोड़ा जाये और जिस पर ईमान लाये बिना स्वर्ग प्राप्त न होता हो। भारत को ईसाइयत से भी बचाइये और इस्लाम से भी।

—स्वामी सत्य प्रकाश सरस्वती

स्वामी विवेकानन्द के विचार

भक्ष्याभक्ष्य

We must use the food which brings the purest mind. (I,[1] 136) अर्थात् हमें ऐसा भोजन करना चाहिए जो मन को अधिक से अधिक पवित्र बनाता है।

"There are certain kinds of food that produce a certain change in the mind, we see it every day. There are other sorts which produce a change in the body and in the long run have a tremendous effect on the mind. There are certain foods which are exciting. If you eat such food, you will find that you cannot control the mind." (IV, 4) अर्थात् हम आये दिन देखते हैं कि कुछ प्रकार का भोजन होता है जो हमारे मन में विशेष प्रकार का विकार उत्पन्न करता है; कुछ इस प्रकार का भोजन होता है जो पहले हमारे शरीर को प्रभावित करता है और आगे चल कर हमारे मन में भयंकर विकार उत्पन्न करता है; कुछ खाद्य पदार्थ उत्तेजक होते हैं। यदि आप इस प्रकार का भोजन करेंगे तो आप अपने मन को वश में नहीं रख सकेंगे।

"वेदान्त इस बात को नहीं मानता कि पशुगण मनुष्यों से पृथक् हैं और ईश्वर ने उन्हें हमारे भोज्यरूप में बनाया है।" (व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, पृ० ११)।

---

१. कोष्ठक के भीतर I, II, III, आदि को Complete Works of Swami Vivekanand के खण्ड की संख्या जाननी चाहिए।

ART PUSTAKALAY

"मैं स्वयं शाकाहारी नहीं हूं, किन्तु मैं शाकाहार को आदर्श मानता हूं। जब मैं मांस खाता हूं, तब जानता हूं कि यह ठीक नहीं है। आदर्श को नीचा करके मुझे अपनी दुर्बलता का समर्थन नहीं करना चाहिए। आदर्श यही है कि मांस न खाया जाये, किसी भी प्राणी का अनिष्ट न किया जाये, क्योंकि पशु भी हमारे भाई हैं।" (व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, पृ० १२)।

"मांस का परित्याग करना चाहिए। यह तो स्वभावत: अपवित्र वस्तु है, अत: इसका परित्याग करना उचित है। दूसरे का प्राण लेकर ही हमें मांस की प्राप्ति होती है। हम तो क्षणमात्र के लिए स्वाद सुख पाते हैं, पर दूसरे जीवधारी को सदा के लिए अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है।"[२]

(प्रेमयोग, पृष्ठ ४)

इस सबके विपरीत स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—

"Is God a nervous fool like you that the flow of the river of his mercy would dry up by a piece of meat? If such be He, His value is not a pie." (IV, 359) अर्थात् क्या ईश्वर तुम्हारे जैसा मूर्ख है, क्या वह इतना नाजुक है कि मांस के एक टुकड़े से उसकी दयारूपी नदी का प्रवाह रुक जायेगा। यदि वह सचमुच ऐसा है तो उसका मूल्य एक पाई के बराबर भी नहीं है।

'The taking of life is undoubtedly sinful. But taking the life of a few goats against the inability to protect the honour of our wife or daughter—which of these is more sinful?" (IV 486-87).

---

२. एकस्य क्षणिका प्रतिरन्य: प्राणैर्विमुच्यते।

किसी की जान लेना निस्सन्देह पाप है। परन्तु अपनी पत्नी या पुत्री की रक्षा करने में असमर्थ होना और कुछ बकरों की जान लेना—इन दोनों में कौन-सा पाप बड़ा है ?

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मांसाहारी लोग ही अपनी पत्नी और पुत्री की रक्षा कर सकते हैं, शाकाहारी नहीं।

"So long as vegetable food is not made suitable to the human system, through progress in chemistry, there is no alternative but meateating...It is true that Emperor Ashoka saved the lives of millions of animals by the threat of the word, but is not the slavery of a thousand years more dreadful than that ?" (IV 486-87)

अर्थात् जब तक रसायन शास्त्र की सहायता से शाकाहारी को मानव शरीर के लिए उपयुक्त नहीं बनाया जायेगा तब तक मांसाहार के सिवा उसका कोई विकल्प नहीं है।...यह ठीक है कि सम्राट् अशोक ने तलवार के जोर से करोड़ों पशुओं की जान बचाई। परन्तु क्या देश की हजार वर्ष की पराधीनता उससे अधिक भयानक नहीं है ?

स्वामी जी के इस कथन से दो निष्कर्ष निकलते हैं—

१. मानव-शरीर की रचना ऐसी है कि उसका भोज्य मांस के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

२. भारत की पराधीनता का कारण यहां के लोगों का मांसाहारी न होना है।

शरीर रचना (Physiology) तथा इतिहास से अनजान व्यक्ति ही ऐसी बातें कह सकता है। मानव शरीर के एक-एक अंग की रचना को देख कर यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि उसका स्वाभाविक भोजन दूध तथा औषधि-वनस्पति ही है, मांस उसके लिए बिजातीय द्रव्य है।

इस विषय में समस्त बुद्धिजीवी एकमत हैं। शाकाहार तथा भारत की पराधीनता में कार्य-कारण सम्बन्ध की कल्पना नहीं की जा सकती। मांसाहार मनुष्य को क्रूर भले ही बना दे, वीर नहीं बना सकता। आज भी शक्ति के सन्दर्भ में शाकाहारी घोड़े (Horse-power) का उल्लेख होता है, मांसाहारी सिंह का नहीं।

"Swami Vivekanand advocated animal food for the Hindus if they were to cope at all with the rest of the world in the present reign of power and find a place among the other great nations." (Biography, P. 96) अर्थात् स्वामीजी के मत में मांसाहारी जातियों की प्रतिद्वन्द्विता में विजय प्राप्त कर संसार के महान् राष्ट्रों के बीच स्थान पाने के लिए मांस खाना हिन्दुओं के लिए आवश्यक है।

"To eat meat is surely barbarous and vegetable food is certainly purer—who can deny it ? For him surely is a vegetarian diet whose one end is to lead spiritual life. But he who has to steer the boat of his life with strenuous labour, must of necessity take meat." (V, 485). अर्थात् मांसाहार निश्चय ही निर्दयता है और शाकाहार निश्चय ही पवित्र है—इससे कौन इन्कार कर सकता है ? आध्यात्मिक जीवन बिताना ही जिसका एकमात्र लक्ष्य है, उसके लिए तो शाकाहारी होना निर्विवाद है। परन्तु शारीरिक श्रम करके जीवन निर्वाह करने वाले के लिए मांसाहार अनिवार्य है।

स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि स्वयं स्वामी विवेकानन्द मांसाहारी क्यों थे, जबकि वे आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करना चाहते थे और जीवन निर्वाह के लिए उन्हें शारीरिक श्रम भी नहीं करना पड़ता

था ? पता नहीं, उन्हें यह भ्रम कब, कहां से हो गया था कि शाकाहारी न परिश्रम कर सकता है और न युद्ध-क्षेत्र में लड़ सकता है।

"I say, eat large quantities of fish and meat" (V. 402) एक भक्त ने स्वामी जी से पूछा—"मांस-मछली खाना क्या उचित और आवश्यक है ?" स्वामी जी ने उत्तर दिया – "खूब खाओ, भाई। इससे जो पाप होगा, वह मेरा।" (विवेकानन्द जी के संग में, पृ० २६७)। पुन: कहा "वैदिक और मनु के धर्म में मछली और मांस खाने का विधान है।" (वही, पृ० २६९)। "घासपात खाकर पेट-रोग से पीड़ित बाबा जी लोगों के दल से देश भर गया है, अत: अब देश के लोगों को मछली मांस खिलाकर उद्यमशील बना डालना होगा।" (वही, पृ० २७०)।

यदि स्वामी जी ने गीता पढ़ी होती तो "जो पाप होगा वह मेरा" जैसी बात न कहते। वहां श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है—"नादत्ते कस्यचित्पापं नैव सुकृतं विभु:' (५,१५) अर्थात् परमेश्वर न किसी के पाप को अपने ऊपर लेता है और न पुण्य को। जब सर्वशक्तिमान् प्रभु किसी के पाप को अपने ऊपर नहीं लेता तो सामान्य पुरुष यह दुस्साहस कैसे कर सकता है ? वस्तुत: जो कर्म एक मनुष्य करता है, उसका संस्कार दूसरे व्यक्ति के अन्त:करण में नहीं पड़ सकता और जब संस्कार ही नहीं तो उसके फल को भोगने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने ही किए का फल भोगता है। यह ईश्वरीय विधान है।

स्वामी जी ने वेद और मनुस्मृति के आधार पर मांसाहार का अनुमोदन करने का प्रयास किया है। परन्तु उनमें कहीं भी मांसाहार का विधान नहीं है। वैदिक (हिन्दू) धर्म में सबसे अधिक बल अहिंसा पर दिया गया है। यदि कहीं मांसाहार का उल्लेख मिलता है तो हमारे ग्रन्थों में प्रक्षेपों अथवा वास्तविक अर्थों को न जानने के कारण है। मनुस्मृति में स्पष्ट कहा है—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ।
समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ।।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ।
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।।
संस्कर्त्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातका ।

मनु० ५, ४८, ४९, ५१

अर्थात्—पशुहिंसा के बिना तो मांस प्राप्त होता ही नहीं । प्राणी वध स्वर्ग का हेतु नहीं है । अतः मांसाहार को सर्वथा त्याग देना चाहिए ।

मांस के पैदा होने की विधि तथा प्राणियों की हत्या व पीड़ा को देख कर मांसभक्षण से बचना चाहिए ।

जिसकी सम्मति से मारते हैं, जो अंगों को काटता है, मारने वाला, खाने वाला, खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला ये आठ प्रकार के हिंसा के दोषी हैं ।

'परन्तु स्वार्थी दोषं न पश्यति'। स्वामी विवेकानन्द जी स्वयं मांसाहारी थे, इसलिए उन्हें मांसाहार में गुण तथा शाकाहार में दोष ही दोष दीख पड़ते थे । तथापि भक्ष्याभक्ष्य के विषय में उनके विचार अस्त-व्यस्त प्रतीत होते हैं । एक स्थान पर वे कहते हैं—"मांस भक्षण का अधिकार उन्हीं मनुष्यों को है जो कठिन परिश्रम करते हैं, और भक्त होना नहीं चाहते" (प्रेमयोग, पृ० ४) । यदि ऐसा है तो स्वामी जी को मांसाहार नहीं करना चाहिए था, क्योंकि वे परिश्रम नहीं करते थे, और भक्त होना चाहते थे । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वे ईश्वर भक्त नहीं थे क्योंकि वे मांसभक्षण करते थे ।

गोमांस-भक्षण

"To the accusation from some orthodox Hindus that the swami was eating forbidden food, he retorted – 'If the people of India want me to keep strictly to my Hindu diet, please tell them to send me a cook and money enough to keep him.' (Biography, P. 129)—' Orthodox Brahmans regarded with abhorrence the habit of animal food The swami courageously told them about the eating of beef by the Brahmanas in Vedic times'". (Bio. P 96).

अर्थात्—जब कुछ रूढ़िवादी कट्टर हिन्दुओं ने स्वामी विवेकानन्द पर गोमांस खाने का आरोप लगाया तो उन्होंने उत्तर दिया कि यदि भारत के लोग चाहते हैं कि मैं हिन्दू भोजन का कठोरता से पालन करूं तो उनसे कह दो कि एक रसोइया भेज दें और उसके वेतन का भी प्रबन्ध कर दें।······रूढ़िवादी ब्राह्मण मांसाहार से घृणा करते हैं, किन्तु मैं साहस के साथ कहता हूं कि वैदिक काल में ब्राह्मण गोमांस खाया करते थे।

अपने दोषों को गुण सिद्ध करने के लिए उन्हीं दोषों को अपने से बड़ों पर आरोपित करना आम बात है। उनके मांसाहारी होने (यहां तक कि उनके गोमांस भक्षक होने) को कोई बुरा न कहे, इसके लिये उन्होंने वैदिककालीन ब्राह्मणों तक को कलंकित करने में संकोच नहीं किया।

Islam

"The Mohammadon religion allows Mohammadons to kill all who are not of their religion. It is clearly

ART PUSTAKALAY

stated in Koran, 'Kill the infidles if they do not become Mohammadons.' They must be put to fire and sword." (II, 365).

इस्लाम मुसलमानों को इजाजत देता है कि वे इस्लाम को न मानने वालों को मार डालें। कुरान में स्पष्ट लिखा है कि काफिरों को मार डालो, यदि वे मुसलमान बनने से इन्कार करें। उन्हें अवश्य जला डालना चाहिए या मौत के घाट उतार देना चाहिए।

"The Mohammadons came upon them (the people of India) slaughtering and killing; slaughtering and killing they overran them." (VII, 279-80).

मुसलमान कसाइयों की तरह लोगों की गर्दनें काटते भारत में आये और मारघाड़ करते हुए देश पर अधिकार कर बैठे।

"It is only when Mohammadons came from other countries and preach to their coreligionists in India about living with men who are not of their own faith that a Mohammadon mob is aroused, and fights" (V. 310)

जब मुसलमान दूसरे देशों से भारत में आते हैं और यहां बसे अपने सहधर्मियों में दूसरे धर्मवालों के साथ रहने के सम्बन्ध में प्रचार करते हैं तब मुसलमानों की भीड़ उत्तेजित होकर यहां के लोगों से लड़ती है।

"What Mohammedonism comes to preach to the world is this practical brotherhood of all belonging to their faith." (II, 371) अर्थात् इस्लाम में भाईचारे की भावना अपने धर्मावलम्बियों तक सीमित है।

फिर भी स्वामी जी कहते हैं—"Mohammad was the prophet of equality of the brotherhood of man." (IV,

133) अर्थात् मुहम्मद साहब मनुष्यमात्र में समानता तथा भाईचारे की भावना के प्रवर्तक थे।

"It is clearly stated in the Koran "Kill the infidele if they do not become Mohammadons" यह मानते हुए भी "The spirit of democracy and equality in Islam appealed to Naren's mind and he wanted to create a new India with Vedantic brain and Muslim body." (Bio. 79) अर्थात् इस्लाम के लोकतन्त्र और समानता ने नरेन के मन को प्रभावित किया और इस कारण वे एक नया भारत बनाना चाहते थे जिसका मस्तिष्क वेदान्त का हो और शरीर इस्लाम का। उनका विश्वास था कि "Without the help of Islam, theorics of Vedanta, however fine and wonderful they may be, are entirely valueless to the vast mass of mankind—For our own motherland a junction of the two great systems—Hinduism and Islam—Vedanta brain and Islam body—is the only hope—I see in my minds' eye the future perfect India rising out of this chaos and strife, glorious and invincible, with Vedant a brain and Islam body." (VI, 415-16).

इससे स्पष्ट है कि स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में हिन्दू धर्म अधूरा धर्म था। वेद, उपनिषद्, दर्शन, गीता आदि पर आधारित उनका वेदान्त मनुष्यमात्र के लिए किसी काम का नहीं है। इतना ही नहीं, भारत के लिए हिन्दुत्व तथा इस्लाम का मिश्रण अनिवार्य है। एक ओर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उद्घोष करने वाला भारत और मनुष्य ही नहीं, प्राणिमात्र को ब्रह्म रूप मानने वाला वेदान्त और दूसरी ओर मतभेद के कारण इस्लाम को स्वीकार न करने वालों की गर्दन काट डालने का

आदेश देनेवाला (स्वयं स्वामी विवेकानन्द के पूर्वोद्धृत शब्दों में) इस्लाम इन दोनों में ३६ का सम्बन्ध होने से मेल होना सर्वथा असम्भव है। संसार के सभी देशों में (विशेषत: भारत में) इस्लाम के कारण जो खून की नदियां बही हैं, और आज भी बह रही हैं, इसका थोड़ा-सा भी ज्ञान यदि स्वामी विवेकानन्द को होता तो कभी ऐसा अनर्गल प्रलाप न करते।

यदि इस्लाम की सहायता के बिना वेदान्त अधूरा है तो वेदान्त को आधारभूत ग्रन्थ प्रस्थानत्रयी के रचयिता ऋषियों तथा शंकर, रामानुज आदि वेदान्त के आचार्यों, व्याख्याताओं और प्रचारकों का क्या मूल्य होगा ?

स्वामी जी के हिन्दुत्व की तुलना में इस्लाम के गीत गाने का कारण अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के प्रति अन्धभक्ति होना है। रामकृष्ण मिशन ने अपने हिन्दू न होने के पक्ष में जो तर्क और प्रमाण कलकत्ता हाईकोर्ट में प्रस्तुत किये थे, उनका एक अंश अहमदाबाद से प्रकाशित होने वाले Times of India (23 1-86) में इस प्रकार उपलब्ध है—

"During his practice of Islam, Ramakrishna repeated the Mantra "Allah"—and said "Namaz" thrice daily. During this while, he also dressed and ate like a Muslim. Another biographical work "Ramakrishna Panth" by Akshoy Sen, provides some more news. A Muslim cook was brought who stood outside the kitchen and instructed a Brahman cook inside made to wear a lungi, how to cook in a Muslim way. We are also told that at this time, Ramakrishna felt a great urge to take beef. However, this urge

could not be satisfied openly. But one day as he sat on the bank of the Ganges, a carcase of a cow was floating by He entered the body of a dog astrally and tasted the flesh of the cow. His Muslim 'sadhana' was now complete.

All this is highly comic but it holds an important position in the mission lore. The lawyers of the mission did not forget to argue in the court that Ramakrishna was on the verge of eating beef This was meant to prove that he was an indifferent Hindu and not far from being a devout Muslim."

उपर्युक्त वक्तव्य से स्पष्ट प्रतीत होता है कि रामाकृष्ण परमहंस में इस्लाम के प्रति ललक थी। इसी प्रयोजन से वे 'अल्लाह' का जाप करते थे और दिन में तीन बार नमाज पढ़ते थे। मुसलमानों जैसी वेशभूषा भी उन्होंने अपना ली थी। अक्षय सेन द्वारा लिखित 'रामकृष्ण' नामक पुस्तक से कुछ और बातों का भी पता चलता था। एक मुस्लिम रसोइया भी लाया गया था, जो उनके (रामकृष्ण के) रसोइये को मुस्लिम पद्धति से खाना बनाना सिखाता था। उस समय रामकृष्ण को गोमांस खाने की इच्छा हुई। किन्तु यह इच्छा स्पष्ट रूप से पूरी नहीं हो सकी (कालान्तर में विवेकानन्द ने खुलकर गोमांस खाया, दूसरों को वैसा करने की प्रेरणा की और वैदिककालीन ब्राह्मणों पर गोमांस भक्षक होने का आरोप भी लगाया) एक दिन जब रामकृष्ण गंगातट पर बैठे तो उन्होंने एक गाय के शव को बहते हुए देखा। इस पर उन्होंने एक कुत्ते के शरीर में प्रवेश करके उस गौ का मांस खाया। इस प्रकार उनकी मुस्लिम साधना पूरी हुई।

यह सब बड़ा विचित्र मालूम होता है, किन्तु मिशन-शिक्षा में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मिशन के वकील न्यायालय में इस बात पर बहस करना नहीं चूके कि रामकृष्ण गोमांस खाने वाले थे। यह सब कहने का उनका उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि रामकृष्ण हिन्दू धर्म के प्रति उदासीन थे और एक समर्पित मुसलमान होने के निकट थे।

इस प्रसंग में मैक्समूलर ने लिखा है – For long days he subjected himself to various kinds of discipline to realise the Mohammedon idea of an all-powerful Allah. He let his beard grow, he fed himself on Muslim diet, he completely repeated sentences from the Koran. For Christ his reverence was deep and genuine, he bowed his head at the name of Jesus, honoured the doctrine of his worship and once or twice attended Christian places of worship "

(A Real Mahatman, Page 35

एकता

अन्यत्र स्वामी जी कहते हैं—"We want to lead mankind to a place where there is neither the Vedas, nor the Bible, nor the Koran. Yet this has to be done by harmonising the Vedas, the Bible and the Koran" (Bio 255) अर्थात् हम मानव समाज को एक ऐसे स्थान पर ले जाना चाहते हैं जहां न वेद हों, न बाइबल और न कुरान। पर ऐसा वेद, बाइबल तथा कुरान में सामंजस्य के द्वारा होगा।

इसके विपरीत स्वामी जी का कथन है—

"मैं किसी भी सम्प्रदाय का विरोधी नहीं हूं। बल्कि नाना सम्प्रदायों के रहने से मैं सन्तुष्ट हूं और मेरी इच्छा है कि उनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती जाए।" (धर्म रहस्य, पृ० ७३) उनके विचार में "सम्प्रदायों की संख्या जितनी अधिक होगी, लोगों को धर्मलाभ करने की उतनी ही अधिक सम्भावना होगी।" (वही, पृ० ८)।

"यदि सभी मनुष्य एक ही धर्म, उपासना की एक ही सार्वजनीन पद्धति और नैतिकता के एक ही आदर्श को स्वीकार कर लें तो संसार के लिए बड़े ही दुर्भाग्य की बात होगी। इससे सभी धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति को प्राणघातक आघात पहुंचेगा। अतः हमें चाहिए कि हम उन लोगों की चेष्टाएं विफल कर दें, जो एक सार्वजनीन धर्म की स्थापना का प्रयत्न करते हैं।" "धर्म (मतों) की विभिन्नता लाभदायक है क्योंकि मनुष्य को धार्मिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा वे सभी देते हैं और इस कारण सभी अच्छे हैं।" (कर्मयोग, पृ० ३२-३३)

"ईश्वर करे जगत् कभी भी एक धर्मावलम्बी न हो।" (भारत में विवेकानन्द, पृ० ३५८)।

'यदि ईश्वर की यह इच्छा होती कि सभी लोग एक ही धर्म का अवलम्बन करें तो इतने विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति न होती।'

(भारत में विवेकानन्द, पृ० ३५९)

"जितने ही प्रकार के धर्म हों उतना ही संसार के लिए अच्छा है। यदि ४०० प्रकार के धर्म हों तो और भी अच्छा। क्योंकि इस अवस्था में धर्म पसन्द करने का अवसर तथा क्षेत्र अधिक रहेगा—ईश्वर करे धर्मों की संख्या इतनी बढ़े कि प्रत्येक मनुष्य को अपने लिए औरों से अलग एक धर्म मिल जाए।" (प्रेम योग, पृ० ६६)।

स्वामी विवेकानन्द को जानना चाहिए था कि धर्म वही होता है जो सार्वकालिक व सार्वदेशिक हो और वह एक ही होता है, अनेक नहीं।

सम्प्रदाय अनेक होते हैं और यह अनेकता सदा दुःखदायक होती है।

"One day he (Vivekanand) spoke of Geng his Khan and declared that he was not a vulgar aggressor. He compared the Mongol Emperor to Napoleon and Alexander, saying that they all wanted to unify the world and that it was perhaps the same soul that had incarnated itself three times in the hope of bringing about human unity through political conquest. In the same way, one soul might have come again and again as Krishna, Buddha and Christ, to bring about the unity of mankind through religion." (Bio. 266-67).

अर्थात्—"एक दिन उन्होंने चंगेजखां की चर्चा की और घोषणा की कि वह कोई असभ्य, अत्याचारी नहीं था। उन्होंने उसकी तुलना नेपोलियन और सिकन्दर से करते हुए कहा कि वे सब संसार को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे और शायद वह एक ही आत्मा थी जिसने राजनैतिक विजय के द्वारा मानवता को एक करने की आशा में तीन बार अवतार धारण किया। इसी प्रकार धर्म के माध्यम से मनुष्यमात्र को एक करने के उद्देश्य से एक ही आत्मा बार-बार कृष्ण, बुद्ध और ईसामसीह के रूप में अवतरित होती रही।" फिर यह भी क्यों न माना जाये कि मुहम्मद साहब ने भी गैर मुस्लिमों की हत्या का आदेश देकर तलवार के जोर से संसार को एक करने का यत्न किया, पर जैसा कि ऊपर उल्लेख हो चुका है, स्वामी विवेकानन्द तो मूलतः एकता के विरोधी थे। विभिन्न धर्मों व सम्प्रदायों में एकता को वे धार्मिक व आध्यात्मिक उन्नति में बाधक मानते थे। इसलिए चंगेजखां के प्रसंग में बुद्ध और ईसा आदि का उल्लेख करना अनर्गल प्रलाप ही माना जायेगा।

बलात् धर्म परिवर्तन

"When the Mohammedons first came, we are told on the authority of Farishta, the oldest Mohammedon historian—said to have been six hundred millions of Hindus. Now (at the time Swami Vivekanand wrote) we are about two hundred millions. And then every Hindu going out of the Hindu pale is not only a man less, but an enemy the more." (V. 233-34).

"The vast majority of Hindu perverts to Islam and Christianity are perverts by the sword or the descendants of those. Ceremonies of expiation are no doubt suitable in the case of willing converts, returning to their mother church, as it were, but on those who were alienated by conquest—as in Nepal or Kashmere—or on strangers wishing to join us, no penance should be imposed." (V, 233-34).

जब मुसलमान पहले पहल भारत में आये थे तो सबसे पहले मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार देश में ६० करोड़ हिन्दू थे। अब लगभग २० करोड़ हैं (हमें ये आंकड़े गलत मालूम पड़ते हैं) और फिर जब भी हिन्दुओं में से कोई निकलता है तो उससे एक आदमी कम हो जाता है, इतना ही नहीं, बल्कि हमारे शत्रुओं में एक बढ़ जाता है।

हिन्दू से मुसलमान या ईसाई बनने वालों में बहुत बड़ी संख्या उन लोगों की है जो तलवार के जोर से मुसलमान या ईसाई बनाये गये

थे या जो ऐसे लोगों की सन्तान हैं जिन्होंने कभी अपनी इच्छा से धर्म परिवर्तन किया था और अब अपने बाप-दादा के धर्म को अपनाना चाहते हैं उनके लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है। परन्तु जिन्हें बलात् अपने धर्म से पतित किया गया है (जैसे नेपाल या कश्मीर में) या जो नया व्यक्ति हमारे धर्म को अपनाना चाहता है, उसके लिए किसी प्रकार का प्रायश्चित आवश्यक नहीं है।

ईसाइयत

"Swami Vivekanand once came out in one of his angriest moods, and declared in the course of his speech at Detroit—

You train and educate and clothe and pay men to do what?—to come over to my country and curse and abuse all my forefathers, my religion, my every thing. You walk near a temple and say, 'you idolators, you will go to hell." But the Hindu is mild. He smiles and passes on saying, 'Let the fools talk.' And if I just touch you with the least bit of criticism, but with the kindest purpose, you shrink and cry, "Do not touch us." We are Americans (or English for that purpose). We criticise, curse and abuse all the heathens of the world, but do not touch us, we are sensitive plants." And whenever your missionaries criticise us, let them remember this. "If all India stands up and takes all the mud that lies at the bottom of the Indian Ocean and throws it up against

the Western countries, it will not be doing an infinitesimal part of what you are doing to us."

(Biography, 126-27)

एक दिन ईसाइयों की एक सभा को सम्बोधित करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने आवेश में आकर कहा—"तुम हमारे देश के लोगों को प्रशिक्षण देते हो, कपड़ा देते हो, पैसे देते हो। पर किस लिए ? इस लिए कि यहां आकर तुम हमारे पूर्वजों को और हमारे धर्म को कोसो और गालियां दो। तुम एक मन्दिर के पास से गुजरते हो, यह कहते हुए "ओ मूर्ति पूजको ! तुम सब नरक में जाओगे। परन्तु हिन्दू भोला है। इसलिए हंस देता है, यह कहते हुए कि मूर्खों को बकने दो। परन्तु यदि मैं तुम्हारी तनिक सी भी आलोचना करने लगूं तो तुम खिसक जाओगे, यह चिल्लाते हुए कि 'हमें मत छूना, हम अमरीकन (या अंग्रेज) हैं। हम संसार भर के मूर्तिपूजकों को कोस सकते हैं, और गाली दे सकते हैं, पर हमें मत छूना, हम छुई-मुई का पौधा हैं। परन्तु जब तुम्हारे मिशनरी हमारी खबर लेने लगें तो उन्हें ध्यान रखना चाहिये कि यदि सारा भारत उठ खड़ा हुआ और हिन्द महासागर के तल में जमी सारी कीचड़ पाश्चात्य देशों के ऊपर फेंकने लगा तो जितना तुम हमारे साथ कर रहे हो, उसकी तुलना में वह कुछ भी नहीं होगा।"

स्वदेश लौटते हुए जहाज पर सवार दो ईसाई मिशनरियों के साथ स्वामी जी की झड़प हो गई। वे हिन्दू धर्म की असभ्यतापूर्ण ढंग से निन्दा कर रहे थे। स्वामी जी ने आगे बढ़ कर उनमें से एक की गरदन पकड़ ली। और गरजते हुए बोले "If you abouse my religion, I will throw you overboard." अर्थात् यदि तुमने फिर मेरे धर्म की निन्दा की तो मैं तुम्हें जहाज से समुद्र में फेंक दूंगा।

डर के मारे मिशनरी ने क्षमा मागी और कहा— "Let me go, Sir, I will never do it again." मुझे छोड़ दो, मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूंगा।

इसके बाद कलकत्ता में एक दिन उन्होंने अपने एक शिष्य से पूछा—"What would you do, if someone insulted your mother ?" The disciple answered, "I will fall upon him, and teach him a good lesson." "Bravo", said the Swami, "Now, If you had the same feeling for you religion, your true mother, you could never see any Hindu brother converted to Christianity. Yet, you see this occuring everyday and you are indifferent. Where is your faith ? Where is your patriotism ? Everyday Christian missionaries abuse Hinduism to your face and yet how many are there amongst you whose blood boils with righteous indignation and who stand up in its defence ?" (Bio. 219)

यदि कोई तुम्हारी माता का अपमान करे तो तुम क्या करोगे ? शिष्य ने उत्तर दिया कि मैं उसकी छाती पर चढ़ जाऊंगा और अच्छी तरह सबक सिखाऊंगा। स्वामी जी ने शाबाशी देकर कहा—"यदि यही भावना अपनी सच्ची माता धर्म के प्रति हो तो कोई भी हिन्दू ईसाई न बनने पाये। परन्तु तुम देख रहे हो कि आये दिन हिन्दू ईसाइयत को ग्रहण करते रहते हैं और तुम उसे तटस्थ भाव से देखते हो। कहां है तुम्हारा धर्म और कहां है तुम्हारा धर्म प्रेम ? आये दिन ईसाई मिशनरी तुम्हारे मुंह पर हिन्दू धर्म को गालियां देते रहते हैं। फिर भी कितने लोग हैं जिनका खून यह देख-सुन कर उबलता है और अपने धर्म की रक्षा के लिए तैयार होते हैं।

वही विवेकानन्द लिखते हैं—

"वे (ईसाई और मुसलमान) हमें चाहे जितनी घृणा की दृष्टि से देखें, चाहे जितनी पशुता दिखायें, चाहे जितना अत्याचार करें—जैसा कि वे हमारे साथ करते हैं और हमारे लिए चाहे जैसी कुत्सित भाषा का प्रयोग करें, पर हम ईसाइयों के लिए गिर्जे और मुसलमानों के लिए मस्जिदें बनवाना नहीं छोड़ेंगे।" (भारत में विवेकानन्द, पृष्ठ ११४-११५)

उपर्युक्त वाक्य पढ़ कर उर्दू का एक शेर याद आता है

पहले तो मुझे खत में सुनाई हैं हजारों।
आखिर में लिखा है कि मैं कुछ नहीं करता॥

"ईसाई सार्वजनिक भ्रातृभाव की बातें करते हैं, किन्तु जो ईसाई नहीं हैं उनके लिए अनन्त नरक का द्वार खुला है"— इस प्रकार ईसाइयों का यह विश्वास कि कोई व्यक्ति तब तक अच्छा और भला नहीं हो सकता जब तक वह ईसाई न बन जाये, उनकी सार्वजनिक उदारता का पर्दाफाश कर देता है। (धर्म रहस्य पृष्ठ० ३४)

"ईसाई लोग कहते हैं कि ईश्वर मेढे के रूप में आया तब तो ठीक है, पर यदि ईश्वर गाय के रूप में आता है, जैसा हिन्दू लोग मानते हैं तो वह बिल्कुल गलत और मिथ्या विश्वास है।" (प्रेमयोग, पृ० ७३)

बुद्ध—ईसा—रामकृष्ण

महात्मा बुद्ध

"Of Buddha the Swami said that he was the greatest man that ever lived." (Bio. 209)

"There were other great man who all said they were incarnations of God himself and those who would believe in them would go to heaven."(IV. 136).

धरती पर जन्म लेने वालों में बुद्ध सब से महान् थे।

दूसरे महापुरुषों ने अपने आपको ईश्वर का अवतार बताया और घोषणा की कि जो उन पर ईमान लायेंगे वे ही स्वर्ग में जायेंगे। अर्थात् बुद्ध ने ऐसा कुछ नहीं कहा।

"भगवान् बुद्ध मेरे ईश्वर हैं। [उनका कोई ईश्वरवाद नहीं, वे स्वयं ईश्वर थे।। इस पर मेरा पूर्ण विश्वास है।" (पत्रावली भाग १ पृष्ठ १३७)

बुद्ध ने अपने लिए कहा—"Buddha is the name of infinite knoWledge—infinite as the sky, I Gautam Buddha, have reached that state." (IV, 136) बुद्ध अनन्त ज्ञान—आकाश के समान अनन्त ज्ञान का नाम है और मैं उस अवस्था में पहुंच गया हूं।

"Believe no book, the Vedas are all humbug. If they agree with me, so much the better for the books, I am the greatest book." (VII, 40-41) अर्थात् किसी पुस्तक पर विश्वास न करो। वेद तो सब बकवास हैं यदि मेरे अनुसार हैं तो ठीक है, क्योंकि मैं ही सबसे बड़ी पुस्तक हूं। "Buddha was the first man to give to the world a complete system of morality." (वही) "बुद्ध पहला व्यक्ति था जिसने संसार को नैतिकता का पूर्ण उपदेश दिया।' ऐसा वही कह सकता है जिसने वेद, उपनिषद्, योगदर्शन, गीता, विदुरनीति आदि को नहीं पढ़ा।

"He never claimed worship." (Bio. 269) बुद्ध ने कभी अपनी पूजा का निर्देश नहीं किया।

'He (Buddha) started a new sect just as others are starting even today" (V, 309) अर्थात् औरों की भांति बुद्ध ने भी अपना एक धर्म चलाया। बौद्धमत में प्रवेश पाने के लिए तीन घोषणाएं करनी पड़ती हैं—

बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।

'I smile when I read books written by modern people, who ought to have known better, that Buddha was the destroyer of Brahmanical idolatory. Little do they know that Buddhism created Brahmanism and idolatory in India." (III, 263-64)

मुझे हंसी आती है जब मैं आज कल के लेखकों की पुस्तकों में पढ़ता हूं कि बुद्ध ने ब्राह्मण धर्म में मान्य मूर्ति पूजा का खण्डन किया। उन्हें पता होना चाहिए कि वास्तव में भारत में ब्राह्मण धर्म और मूर्ति पूजा को जन्म ही बौद्ध मत ने दिया।

"The spread of Buddhism was less owing to the doctrines and the personality of the great preacher than to the temples that were built, the idols that were erected and the gorgeous ceremonies that were put before the nation. Thus Buddhism progressed. But later on the whole thing degenerated." (III, 217)
"The result of Buddha's constant inveighing against a personal God was the introduction of idols in India. In the Vedas they knew them not, because they

saw God everywhere, but the reaction against the loss of God as Creator and Friend was to make idols, and Buddha himself became an idol.'' (VII, 21-22)

अर्थात्—बौद्ध मत का प्रसार उसके संस्थापक के व्यक्तित्व और सिद्धान्तों की अपेक्षा भव्य मन्दिरों, उनमें प्रतिष्ठित आकर्षक मूर्तियों तथा उत्सवों की चमक-दमक के कारण अधिक हुआ। बौद्ध मत बड़ी तेजी से बढ़ा पर जल्दी ही औंधे मुंह गिर पड़ा। बुद्ध के ईश्वर विरोधी अभियान के परिणामस्वरूप भारत में मूर्ति पूजा का आरम्भ हुआ। वेदों में मूर्ति पूजा का उल्लेख कहीं नहीं मिलता, क्योंकि उनके लिए ईश्वर सर्वव्यापक था परन्तु सृष्टिकर्ता तथा मित्र के रूप में उपलब्ध ईश्वर का स्थान मूर्तियों ने ले लिया। स्वयं बुद्ध भी मूर्ति बन कर रह गये।

"बुद्ध एक बड़े वेदान्ती थे, क्योंकि धर्म वास्तव में वेदान्त की ही एक शाखा विशेष मात्र है।' देववाणी, पृ० १४१) बुद्ध को वेदान्त का प्रचारक मानते हुए अपने 'ज्ञानयोग' नामक ग्रन्थ में वे लिखते हैं—"बुद्धदेव ने आकर साधारण लोगों में वेदान्त का प्रचार करके भारतवर्ष की रक्षा की।" पृष्ठ १५७) परन्तु एक अन्य जगह में उन्होंने साफ कह दिया—बौद्ध धर्म और वेदान्त को एक समान समझना भूल है, निरर्थक है।" (हिन्दू धर्म, पृ० ३४) नवीन वेदान्त से बौद्धमत अधिक प्राचीन है, इसलिए वेदान्त को बौद्धमत की प्रतिक्रिया रूप होने से भले ही उसकी शाखा कह दिया जाए, बौद्धमत को वेदान्त की शाखा नहीं माना जा सकता।

"What was in this country before Buddha's advent? Only a number of religious principles recorded on bundles of palm leaves—and those too known only

to a few It was lord Buddha who brought them down to the practical field and showed how to apply them in everyday life.'' (VII.118) अर्थात् बुद्ध के प्रादुर्भाव से पहले इस देश में क्या था ? सिर्फ भोजपत्रों पर लिखे पड़े कुछ धार्मिक उपदेश जिनको आम लोग जानते भी नहीं थे। ये महात्मा बुद्ध थे, जिन्होंने उन्हें व्यवहार जगत् में उतार कर दिखाया। फिर उसी बौद्धमत के विषय में विवेकानन्द कहते हैं—

"बौद्ध धर्म यद्यपि आंशिक रूप में पशु बलि निवारण करने में सफल हुआ, पर उसने समस्त देश को मन्दिर, मूर्ति, तन्त्र तथा साधुओं की अस्थियों से पूर्ण कर दिया" (हमारा भारत पृष्ठ २६) अति कुत्सित अनुष्ठान पद्धतियां, अत्यन्त भयानक और अश्लील ग्रन्थ जो मनुष्यों द्वारा और कभी नहीं लिखे गये, मनुष्य जिसकी कल्पना तक नहीं कर सके, अत्यन्त भीषण पाशविक अनुष्ठान पद्धतियां जो और कभी धर्म के नाम से प्रचलित नहीं हुई—ये सभी बौद्ध धर्म की सृष्टि हैं।

(भारत में विवेकानन्द, पृष्ठ २२३)

इन्होंने अपने ग्रन्थ 'प्राच्य और पाश्चात्य' में लिखा है—"जैन और बौद्ध आदि के फेर में पड़ कर हम लोग तामसिक लोगों का अनुसरण कर रहे हैं।" (पृष्ठ १३) एक कदम और आगे बढ़ कर उन्होंने स्पष्ट ही लिखा है—"बुद्ध ने हमारा सर्वनाश किया और ईसा ने ग्रीस और रोम का सर्वनाश किया।" (पृष्ठ १५) अपने एक भाषण में उन्होंने कहा—"जहां कहीं भी बुद्धदेव पहुंचे वहीं उन्होंने हिन्दुओं द्वारा पवित्र मानी जाने वाली सभी वस्तुओं को मिट्टी में मिला देने का प्रयत्न किया।" (हिन्दू धर्म, पृष्ठ ३८)

ईसा मसीह

"ईश्वर ने ईसा होकर जन्म लिया।"

(देववाणी पृष्ठ ४०)

ईसा, बुद्ध, राम, कृष्ण आदि के समान अवतार पुरुष ही धर्म दे सकते हैं। वे दृष्टिमात्र अथवा स्पर्श मात्र से ही दूसरों में धर्म की शक्ति का संचार कर सकते हैं।" (देववाणी पृष्ठ ४९) अर्थात् राम, कृष्ण आदि के समान बुद्ध ईश्वर का अवतार थे।

'ईशदूत ईसा' (पृष्ठ ३) में उन्होंने लिखा - "ईसा ने कहा है कि किसी भी व्यक्ति ने ईश्वरपुत्र (जो वे स्वयं थे) के माध्यम बिना ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है और उनका यह कथन अक्षरशः सत्य है।"

पृष्ठ १७ पर वे लिखते हैं "यदि मैं ईसा की उपासना करूं तो मेरे लिए ऐसा करने की एक ही विधि हैं -- और वह है उसकी ईश्वर के समान आराधना करना।"

"ईसा तो ईश्वरावतार थे। लोग उनकी हत्या कर ही नहीं सकते थे। उन्होंने जिसे सूली (Cross) पर चढ़ाया था वह तो उनकी छाया-मात्र थी, मृगतृष्णा के समान भ्रान्ति मात्र।" (विवेकानन्द जी से वार्तालाप, पृष्ठ १२०) ईसा के प्रति इतनी अन्ध श्रद्धा तो ईसाइयों में भी नहीं है।

अन्यत्र वे ईसा के ईश्वरत्व को नकारते हुए उनके महापुरुष होने में भी सन्देह करते हुए कहते हैं -

"ईसामसीह की जो शक्तियां उनके चमत्कारों में और रोगमुक्त करने में दीख पड़ती थी, वास्तव में वे क्या थीं? ये तो तुच्छ गंवारू असंस्कृत, त्याज्य चीजे थीं। और वे उन्हें किए बिना नहीं रह सकते थे, क्योंकि वे ऐसे ही लोगों के बीच रहते थे।" (प्रेमयोग, पृ० ९२)।

अन्यत्र (देववाणी) में हम पढ़ते हैं—"ईसामसीह मनुष्य थे इस लिए वे जगत् में अपवित्रता देख सकते थे।" (पृष्ठ ८६) "ईसा हम लोगों के समान मनुष्य प्रकृति सम्पन्न थे।" (पृ० ८६) ईसामसीह असम्पूर्ण थे क्योंकि उन्होंने जिस आदर्श का प्रचार किया उसके अनुसार उन्होंने जीवन यापन नहीं किया। और सर्वोपरि बात तो यह है कि उन्होंने नारी जाति को पुरुष के समान अधिकार नहीं दिया।" (पृष्ठ) १६५) फिर भी उन्हें हिन्दुओं के ईसा मसीह के रेवड़ की भेड़ बनने में कोई आपत्ति नहीं थी। इस विषय में उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा था —"यदि अमुक मनुष्य ईसाई बनता है तो हम क्यों बुरा मानें ? जो धर्म उन्हें अपने मत के अनुकूल जान पड़ता है, उसका अनुगामी उन्हें बनने दो। तुम क्यों वाद-विवाद में सम्मिलित होते हो ? लोगों के भिन्न-भिन्न मतों को सहन कर लो।"

महात्मा बुद्ध और ईसा मसीह के विषय में विवेकानन्द जी का क्या मत था, इसका निश्चयात्मक कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है। प्राय: सभी विषयों में उनके परस्पर विरोधी वक्तव्य मिलते हैं।

श्री रामकृष्ण परमहंस

"Too much faith in personality has a tendency to produce weakness and idolatory." (VII 84-85)

व्यक्ति विशेष में श्रद्धा या आस्था का अतिरेक निर्बलता तथा मूर्तिपूजा को जन्म देता है।

परन्तु स्वामी जी इस बात को उस समय बिल्कुल भूल जाते हैं जब वे श्री रामकृष्ण के विषय में लिखते या बोलते हैं।

"Bhagwan Ramakrishna incarnated himself in

India, to demonstrate what the true religion of the Aryan race is" (VI,183)

भगवान रामकृष्ण ने आर्य जाति के वास्तविक धर्म का दिग्दर्शन कराने के लिए भारत में अवतार लिया।

"Through thousands of years the lives of the great prophets of yore come down to us and yet, not one stands so high in brilliance as the life of Ramakrishna Paramhansa." (III 312)

हजारों वर्षों में प्राचीन काल के अनेक सिद्ध पुरुषों के जीवन हमारे सामने आये, परन्तु उनमें से एक भी रामकृष्ण परमहंस की ऊंचाई को न छू सका।

संस्कृत के एक श्लोक के माध्यम से अपने अराध्यदेव का स्तुतिगान करते हुए विवेकानन्द जी ने लिखा —

प्राप्तं यद्वै त्वनादि निधनं वेदोदधिं मथित्वा,
दत्तं यस्य प्रकरणे हरिहर ब्राह्मणादिदेवैर्बलम् ।
पूर्णं यत्तु प्राणसारैर्भूमि नारायणानाम्,
रामकृष्णस्तनुं धत्ते तत्पूर्णं पात्रमिदं भोः ॥

पत्रावली भाग १, पृ० १३८

इस श्लोक में विवेकानन्द जी ने श्री रामकृष्ण को ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि पौराणिक देवताओं से भी बढ़ाकर साक्षात् नारायण कहा है।

पौराणिक देवपूजा के समान श्री रामकृष्ण के प्रसंग में भी उन्होंने आवाहन, विसर्जन, षोडशोपचार पूजन, नमस्कार आदि का विधान किया है। स्वगुरु को धर्म का संस्थापक (धर्मसंस्थापनाय—गीता), सर्व-

ART PUSTAKALAY

धर्मस्वरूप तथा अवतारों में सर्वश्रेष्ठ बताते हुए उनके प्रति नमस्कार आदि की क्रियाओं का निर्देश किया है —

स्थापकाय च धर्मस्य स्वरूपिणे ।
अवतारवरिष्ठाय रामकृणाय ते नमः ॥

(विवेकानन्द जी के संग में, पृ० ३६)

वे रामकृष्ण की पादुकाओं को पुष्प अपित तथा गुरु प्रतिमा पर क्षीरभोग चढ़ाने आदि का भी समर्थन करते थे। (विवेकानन्द जी के संग में, पृ० १३९)

अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा—"श्रीरामकृष्ण ईश्वर के अवतार थे, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। भगवान् कृष्ण का जन्म हुआ ही था, यह हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते और बुद्ध व चैतन्य जैसे अवतार पुराने हैं, पर श्री रामकृष्ण सबकी अपेक्षा आधुनिक और सबसे पूर्ण हैं।" (पत्रावली भाग २, पृ० ५४)

राम, कृष्ण और बुद्ध आदि की ऐतिहासिकता को नकारते हुए उन्हें रामकृष्ण से हीन सिद्ध करने के लिए वे यह कहने में भी संकोच नहीं करते —"जिनकी पवित्रता, प्रेम और ऐश्वर्य का कणमात्र प्रकाश ही राम, कृष्ण, बुद्ध और ईसा आदि में था।" (पत्रावली भाग १, पृ० १८७)

"रामकृष्ण के अवतार की जन्मतिथि से सत्युग का आरम्भ हुआ।" (पत्रावली २, पृ० १०९)

"उन (रामकृष्ण) पर जिनका विश्वास नहीं है और उनमें जिसकी भक्ति नहीं है, उसका कहीं कुछ न होगा।" (पत्रावली भाग १, पृ० १८८)

श्री रामकृष्ण के संबंध में विवेकानन्द जी के अधिकांश कथन

हास्यास्पद तथा अविश्वसनीय हैं। अन्यान्य महापुरुषों के साथ उनकी तुलना करने में तो वे औचित्य की सभी सीमाओं का अतिक्रमण कर गये हैं।

"Two days before the dissolution of the Master's body, Narendra was standing by the Master's bedside when a strange thought flashed into his mind; "was the Master truly an incarnation of God ?' He ssid to himself that he would accept Shri Ramakrishna's divinity if the Master, at the threshold of death, declared himself to be an incarnation. He stood looking intently at the Master's face. Slowly the Master's lips parted and he said in a clear vioce, 'O my Naren are you still not convinced ? He who in th past was born as Rama and Krishna is now living in this very body as Ramakrishna -- but not from the standpoint of Vedanta." Thus Shri Ramakrishha, in answer to Naren's mental query, put himself in the category of Rama and Krishna who are recognised by orthodox Hindus as two of the Avatars or incarnations of God." (Bio 66-67)

मृत्यु से दो दिन पहले नरेन्द्र अपने गुरु के बिस्तर के पास खड़े थे। अचानक एक विचार उनके मन में कौंध गया—"क्या गुरुवर सचमुच ईश्वर का अवतार हैं ? उन्होंने मन ही मन में कहा कि मैं तो श्री रामकृष्ण को ईश्वर का अवतार तब मानूंगा जब मृत्यु के समय वे स्वयं अपने अवतार होने की घोषणा करेंगे। वे टकटकी लगाकर गुरुवर के चेहरे की ओर देखते खड़े रहे। धीरे-धीरे श्री रामकृष्ण के होंठ हिले

उन्होंने स्पष्ट आवाज में कहा—'नरेन, तुम्हें अभी तक (मेरे ईश्वरावतार होने का) विश्वास नहीं हुआ ? जो कभी राम और कृष्ण के रूप में पैदा हुआ था, वही अब मेरे इस शरीर में विद्यमान है—किन्तु तुम्हारे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।' इस प्रकार नरेन्द्र के प्रश्न के उत्तर में रामकृष्ण ने अपने आपको सनातनी हिन्दुओं द्वारा मान्य ईश्वर के राम और कृष्ण दो अवतारों की श्रेणी में रख दिया।

"The dead never return, the past night does not reappear. Neither does man inhabit the same body over again." (VI 185)

मरने वाला वापस नहीं आता। मनुष्य मरने के बाद उसी शरीर में फिर नहीं आता।

किन्तु मरने के बाद भी राम कृष्ण (अग्नि में शरीर के भस्म होने के बाद), उसी शरीर में आते रहे –

"Within a week of the Master's passing away Narendra was one night strolling in the garden with a brother disciple, when he saw in front of him a luminous figure There was no mistaking: it was Shri Ramakrishna himself. Narendra remained silent, regarding the phenomenon as an illusion. But his brother disciple exclaimed in wonder, 'See, Naren ! See ! There was no room for further doubt. Naredra was convinced that was Shri Ramakrishna who had appeared in luminous body. As he called to the other brother disciples to behold the Master, the figure disappeared. (Bio. 69)

श्री रामकृष्ण की मृत्यु के एक सप्ताह बाद एक दिन नरेन्द्र अपने एक गुरुभाई के साथ बाग में घूम रहे थे कि उन्हें अपने सामने एक द्युतिमान शरीर दिखाई दिया। इसमें भूल की कोई गुंजाइश नहीं थी, वह स्वयं श्री रामकृष्ण थे। परन्तु हो सकता है, यह उनके मन का भ्रम हो, इसलिए वे चुप रहे। इतने में उनका गुरुभाई आश्चर्यचकित हो चिल्लाया—'देखो नरेन्द्र! देखो! अब और सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं था। नरेन्द्र को विश्वास हो गया कि वह श्री रामकृष्ण ही थे जो उस द्युतिमान शरीर में प्रकट हुए थे। जितने में उन्होंने अपने दूसरे गुरुभाइयों को आवाज दी, इतने में वह अन्तर्ध्यान हो गये।" जब आत्मा शरीर को छोड़ने के बाद पुनः उसी शरीर में नहीं आती तो रामकृष्ण कैसे आ सकते थे?

श्री रामकृष्ण इस रूप में क्यों आए और चले गये—कुछ पता नहीं चला। शायद अपने शिष्यों को अपने ईश्वरावतार होने का और अधिक विश्वास दिलाने।

विवेकानन्द जी का झुकाव वाराणसी के सन्त पवहरि की ओर होने लगा था। एक रात वे बाबा पवहरि का ध्यान करते लेटे थे। इतने में श्री रामकृष्ण वहां आ पहुंचे और चुपचाप दरवाजे के पास खड़े होकर नरेन्द्र की आंखों में आंखें डाल कर देखते रहे। ऐसा २१ दिन तक होता रहा। नरेन्द्र समझ गये। उन्होंने गुरु के प्रति पूर्ण आस्था न होने के लिये अपने आपको बुरी तरह धिक्कारा। आखिरकार उन्हें विश्वास हो गया। उन्होंने अपने मित्र को पत्र लिखा—"Ramakrishna has no peer. Nowhere else in the world exists such unprecedented perfection." (Bio. 82)

अर्थात्—रामकृष्ण के समान कोई नहीं हुआ। संसार में उनके जैसा पूर्ण पुरुष कभी नहीं पैदा हुआ।

समाज–सेवा

"Ramakrishna and Vivekanand were the first awakeners of India national consciousness; they were India's first nationalist leaders in the true sense of the term. The movement for India's liberation started from Dakshineshwar" (Bio. 231)

रामकृष्ण और विवेकानन्द भारत की राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत थे। वे यथार्थ में भारत के सबसे पहले राष्ट्रीय नेता थे। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन का आरम्भ दक्षिणेश्वर से हुआ था।

यह कितना बड़ा झूठ है, यह स्वयं स्वामी विवेकानन्द के कथन से प्रमाणित है—' Let no political significance ever be attached falsely to my writings what nonsense !" he had said as early as September 1894. A year later he wrote: "I will have nothing to do with political nonsense. I do not believe in politics. God and truth are the only politics in the world. All else is trash," (Bio., 232) अर्थात् मेरे लेख या कथन का झूठमूठ कोई राजनीतिक महत्व न समझा जाये। यह सब बकवास है—यह उन्होंने सितम्बर १८९४ में कह दिया था। एक वर्ष बाद उन्होंने लिखा "—राजनीति की बेहूदा बातों से मेरा कोई संबंध नहीं होगा। राजनीति में मेरा कोई विश्वास नहीं है। ईश्वर और सत्य ही संसार में एकमात्र राजनीति है, और सब बेकार है।'

मैं समाज के दोषों का सुधार करने की चेष्टा नहीं करता। मैं सुधार या संस्कार नहीं चाहता। सौ वर्ष से वे सुधार आन्दोलन चला

रहे हैं, पर सिवाय निन्दा और विद्वेषपूर्ण साहित्य की रचना के क्या लाभ हुआ । ?" (भारत में विवेकानन्द पृ० १२६, १२७, १५३) इन सौ वर्षों में समाज सुधार के लिए जो आन्दोलन हुए उनसे देश का कोई हित नहीं हुआ ।" "हमारे अधिकांश समाज सुधार कार्य पाश्चात्य प्रणाली का अनुकरणमात्र हैं ।"

(भारत में विवेकानन्द, पृ० १२५)

"हमें बालविवाह निराकरण, विधवा विवाह आदि सुधारों के सम्बन्ध में माथापच्ची नहीं करनी चाहिए ।" मैं यह स्वीकार करता हूं कि बालविवाह से जाति अधिक नीतिमान् और पवित्र बनती है ।" (भारतीय नारी पृ० ३४, ५३) "जिन मूल भावों से बालविवाह प्रथा का प्रचलन हुआ है, उनके ग्रहण से ही यथार्थ सभ्यता का संचार हो सकता है ।" (भारत में विवेकानन्द पृ० ४३०) "मैं यह भी मानता हूं कि बाल विवाह ने हिन्दूजाति को सतीत्व धर्म से विभूषित किया है ।"

(ज्ञानयोग पृ० ३०)

पता नहीं, कैसे वे यह कह गये कि "कबीर, नानक, चैतन्य, ब्राह्म समाज और आर्यसमाज का यदि जन्म न होता तो आज भारत में हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों और ईसाइयों की संख्या बहुत अधिक होती ।" (वर्तमान भारत, पृ० २७)

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार उनके प्रेरणास्रोत "श्री रामकृष्ण जगत् में कुछ भी बुराई नहीं देख पाते थे और इसलिए वे उन बुराइयों को दूर करने का कोई प्रयोजन नहीं देखते थे ।" (देववाणी, पृ० ६६) डा० भवानीलाल भारतीय के शब्दों में "रामकृष्ण सर्वथा व्यक्तिगत साधना में लीन, आत्मोन्मुख, आत्मकेन्द्रित एक भावुक महापुरुष थे । उनकी सम्पूर्ण साधना और विचार प्रणाली व्यक्तिनिष्ठ व्यष्टिकेन्द्रित थी। समाजसेवा, देशभक्ति, जाति सुधार आदि उनकी दृष्टि में दम्भमात्र

थे। उन्होंने यदा-कदा प्रसंग आने पर उन समाज-सुधारकों की खिल्ली ही उड़ाई जो आत्मोद्धार की बलि देकर समष्टिहित के लिए उत्साहित थे।"

वस्तुतः रामकृष्ण और उनके शिष्य विवेकानन्द जी का विचार और कार्यक्षेत्र अद्वैतवेदान्त तक सीमित था, समाज सेवा या देशहित से उनका कुछ लेना-देना नहीं था। देश के स्वाधीनता संग्राम में उनके योगदान का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता।

' First and last he (Vivekanand) was the boy who had dedicated his life to Ramakrishna. The policy of Ramakrishna mission has always been faithful to Vivekananda's intention. In the early twenties when India's struggle with England had become intense and bitter, the mission was harshly criticised for refusing to allow its members to take part in the freedom struggle." (Teachings of Swami Vivekanand, XXXVIII) अर्थात् स्वामी विवेकानन्द ने अपना जीवन रामकृष्ण को समर्पित कर दिया था। रामकृष्ण मिशन की नीति सदा विवेकानन्द की इच्छा के अनुरूप रही, जब इंग्लैण्ड के विरुद्ध भारत का संघर्ष उग्र हो गया और उसमें कठिनाई आ गई तो अपने सदस्यों को स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने की अनुमति न देने के कारण मिशन की कड़ी आलोचना हुई थी।

"It has ever been my conviction that we shall not be able to rise unless Western countries come to our help. In India no appreciation for merit can be found and no financial support." (Bio. 255) अर्थात मेरा सदा से यह विश्वास रहा है कि हम पाश्चात्य देशों की सहायता के बिना

ऊपर नहीं उठ सकेंगे। भारत में योग्यता के लिए न किसी को सराहना मिलती है और न आर्थिक सहायता।

उन्हें अपने देश भारत की अपेक्षा अमरीका में रहना अधिक पसन्द था उनकी स्पष्टोक्ति थी—"भारत की अपेक्षा मैं यहां (अमरीका में) अधिक काम करूंगा—यहां मुझे खाने की, कपड़े लत्ते की सभी सुविधायें प्राप्त हैं। फिर मैं कृतघ्नों और बुद्धिहीनों के देश में क्यों लौटूं।" (भवानीलाल भारतीय—ऋषि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द, पृ० ३०६)।

ब्रिटिश सरकार की ठकुरसुहाती की दृष्टि से उन्होंने अपने सहयोगियों को निर्देश दिया हुआ था कि तैयार किये जा रहे भाषण में उन मुद्दों पर विशेष ध्यान रखा जाए जिनसे महारानी विक्टोरिया के प्रति कृतज्ञता का भाव व्यक्त हो। (भवानीलाल भारतीय, पृ० ३००)।

डा० मजूमदार के शब्दों में "विवेकानन्द को अंग्रेजी राज्य का गुणगान करने के कारण सर्वप्रथम अंग्रेजों ने ही उछाला था यह उनकी राजभक्ति का ही पुरस्कार था।" (बी. बी. मजूमदार—हिस्ट्री आफ सोशल एण्ड पौलिटीकल आइडियाज, पृ० २६७)।

मूर्ति पूजा

"God is eternal, without any form, omnipresent. To think of him as possessing any form is blasphemy." (VII, 411)

परमेश्वर नित्य, निराकार तथा सर्वव्यापक है। उसे साकार मानना उसकी निन्दा करना है।

"वैदिक युग में प्रतिमापूजन का अस्तित्व नहीं था। उस समय

लोगों की यह धारणा थी कि ईश्वर सर्वत्र विराजमान है। किन्तु बुद्ध के प्रचार के कारण हम जगत् स्रष्टा एवं अपने सखास्वरूप ईश्वर को खो बैठे और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप प्रतिमापूजन की उत्पत्ति हुई। लोगों ने बुद्ध की मूर्ति गढ़ कर पूजा करना आरम्भ किया।" (देववाणी, पृ० ७५) "पहले बौद्ध चैत्य, फिर बौद्ध स्तूप, उससे बुद्धदेव का मंदिर निर्मित हुआ। इन बौद्ध मंदिरों से हिन्दू मन्दिरों की उत्पत्ति हुई।" (स्वामी विवेकानन्द से वार्तालाप, पृ० ११०) "बौद्धधर्म ने ही भारत में ब्राह्मण धर्म और मूर्तिपूजा की सृष्टि की थी।"

(भारत में विवेकानन्द, पृ० २२२)।

"वेदों के अनुसार बाह्य पूजा या मूर्तिपूजा सबसे नीची अवस्था है—

उत्तमो ब्राह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः।
स्तुतिर्जपोऽधम भावो बहिः पूजाऽधमाधमा ॥

और निष्कर्ष है—"मूर्तिपूजा हिन्दूधर्म का आवश्यक अंग नहीं है।" (हिन्दू धर्म २३) परन्तु यहां उद्धृत प्रमाण वेदमन्त्र न होकर महानिर्वाणतन्त्र चतुर्थ समुल्लास का १२ वां श्लोक है।

"Man is to become divine by realising the divine. Idols or temples are only the supports, the helps of his spiritual childhood; but on and on he must progress." (I,16) "It (idolatory) is the attempt of undeveloped minds to grasp high spiritual truths." (I.17)

मनुष्य परमेश्वर का साक्षात्कार करके ही परमात्मा बनता है। मूर्ति और मंदिर उसके आध्यात्मिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था के सहायक या आलम्बन-मात्र हैं उसे आगे बढ़ना चाहिए। मूर्तिपूजा अविकसित मस्तिष्क वालों के लिए उच्च आध्यात्मिक सच्चाइयों को

ग्रहण करने की दिशा में बढ़ने का प्रयास है। अन्यत्र वे लिखते हैं :
"External worship, material worship," say the scriptures, "is the lowest stage, struggling to rise high" (I, 16)

आपाततः देखने में यह ठीक प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में यह एक छलावा है। मूर्तिपूजक सदा मूर्तिपूजक ही रहता है। जहां से चलता है वहीं पड़ा रहता है। यह स्वयं श्री रामकृष्ण तथा श्री विवेकानन्द के जीवन से प्रमाणित है। स्वामी विवेकानन्द के जीवनी लेखक के अनुसार—I. "On August 15, 1886 the Master's suffering became almost unbearable...At two minutes past one in the early morning of August 16, Shri Ramakrishna uttered three times in a ringing voice the name of his beloved Kali and entered into the final Samadhi from which his mind never again returned to the physical world" (Bio. 69) सारांश यह कि मरते समय भी श्री रामकृष्ण की जिह्वा पर उसी काली का नाम था जिसकी पूजा से उन्होंने अपना आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ किया था। उससे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सके।

II. 'He (Swami) Vivekanand expressed his desire to worship Kali or the Math the following day and asked two of his disciples to procure all the necessary articles for the ceremony. The same night he expired" (Bio, 339-40)

अन्तिम समय में स्वामी विवेकानन्द जी को भी ईश्वर की याद नहीं आई। काली की मूर्ति की पूजा करते-करते ही उन्होंने प्राण त्यागे।

ART PUSTAKALAY

विवेकानन्द जी की कथनी और करनी में कितना अन्तर था, यह 'प्रेमयोग' नामक ग्रन्थ में उनके इस कथन से स्पष्ट हो जाता है— "यदि लोग यह समझने लगें कि प्रतीकों की पूजा द्वारा हम मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं तो वह उनकी बड़ी भारी भूल होगी।" (पृ० ६७) फिर क्यों विवेकानन्द जी आजीवन मूर्तिपूजा में ही लिप्त रहे ?

स्वामी जी ने ठीक लिखा है—"God in the picture is right, but the picture as God is wrong." (I,47) अर्थात् "मूर्ति में ईश्वर है यह तो ठीक है, परन्तु मूर्ति ईश्वर है यह गलत है।" परन्तु विवेकानन्द जी मूर्ति को ईश्वर ही मानते थे। उदाहरणार्थ: स्वामी जी की अमरनाथ की यात्रा के प्रसंग में उनकी जीवनी में लिखा है :—"At the back of the cave stood the image of Shiva, all ice. The Swami entered the cave, his whole frame shaking with emotion. His naked body was smeared with ashes, and his face radiant with devotion Then he prostrated himself in the darkness of the cave before that whiteness The Swami almost fainted. He had a vision of Shiva himself. He (the Swami) said "The image was the Lord himselef. I have never seen anything so beautiful, so inspiring" (Bio 270-71)

अर्थात्—अमरनाथ की गुफा के पीछे की ओर शिव की मूर्ति थी बर्फ ही बर्फ। स्वामी जी गुफा में प्रविष्ट हुए। उनका पूरा शरीर भावावेश में कांप रहा था। उनका नंगा शरीर भस्म से आवेष्टित था और चेहरा भक्तिभावना से चमक रहा था। वे मूर्ति के आगे साष्टांग लेट गये और चेतनाशून्य हो गये। उन्होंने भगवान् का साक्षात् दर्शन किया। उन्होंने कहा···"मूर्ति साक्षात् भगवान् है। मैंने इतनी सुन्दर और इतनी प्रेरणादायक वस्तु कभी नहीं देखी।"

कश्मीर यात्रा के बीच स्वामी जी क्षीरभवानी नामक तीर्थस्थान को देखने गये तो वहां उन्होंने मुसलमानी शासनकाल में तोड़े गये मंदिर के खंडहरों को देखा। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे क्षीरभवानी ही कह रही हो…"मेरी इच्छा से ही यवनों ने मंदिर का विध्वंस किया है, जीर्ण मंदिर में रहने की इच्छा से ही मैंने ऐसा किया था। क्या मेरी इच्छा से अभी यहां सात मंजिला सोने का मंदिर नहीं बन सकता ? तू क्या कर सकता है ? मैं तेरी रक्षा करूंगी या तू मेरी रक्षा करेगा ?'

(विवेकानन्द के संग में, पृ० १६५)

श्री विवेकानन्द जी के अनुसार "प्रतिमायें भी भगवान् की विशेष गुणवाचक मूर्तियां हैं।" (विवेकानन्द चरित, पृ० १४६) पत्थर की बनी जड़मूर्ति में सच्चिदानन्द भगवान् के गुणों की कल्पना नहीं की जा सकती।

विवेकानन्द जी कहते हैं—"कैसी विचित्र बात है कि यदि कोई मूर्ति के सामने घुटने टेकता है तो वह घृणित कार्य समझा जाता है और जब वह अपने पति या पत्नी के पैरों पर झुकता है तो वह एक आदर्श काम समझा जाता है।"

(प्रेम योग, पृ० २५)

विचित्र बात तो यह है कि विवेकानन्द जी जैसा व्यक्ति जड़ और चेतन में भेद नहीं कर पाता। झुकने वाले के प्रति जैसा व्यवहार पति या पत्नी का होता है, क्या वैसा ही व्यवहार पत्थर की मूर्ति का भी अपने सामने वाले के प्रति होता है ?

विवेकानन्द जी का कहना है कि—"यदि इस मूर्तिपूजा में नाना प्रकार के कुत्सित भाव भी प्रविष्ट हो गये हों, फिर भी उसकी निन्दा नहीं करता। यदि तुम निराकार की उपासना के योग्य हो तो वही करो, पर दूसरों को गाली क्यों देते हो।"

(विवेकानन्द चरित, पृ० ४२६)

पर जहां मूर्ति पूजा के विरोधी उसे व्यर्थ मान कर उसकी युक्ति-प्रमाण-पुर:सर आलोचना करके शान्त हो जाते हैं, वहां उसके समर्थक स्वामी विवेकानन्द मूर्तियों को तोड़ फेंकने पर बल देते हैं और निराकार परमेश्वर की पूजा का निर्देश करते हैं—"जो उच्च नीच सभी हैं, परम साधु भी हैं और पापी भी—सब उस प्रत्यक्ष, जानने योग्य, यथार्थ सर्वशक्तिमान् ईश्वर की उपसना करो। बाकी सब मूर्तियां को तोड़ डालो। जिसमें न पूर्वजन्म है, न परजन्म; न मृत्यु है, न आवागमन; जिसमें हम सदा एक होकर रहे हैं और रहेंगे; उसी ईश्वर की उपासना करो, बाकी सब मूर्तियां तो तोड़ डालो।"

(पत्रावली भाग २, पृ० १९९)

मूर्तिपूजकों के बाह्याडम्बरों से क्षुब्ध होकर स्वामी जी अपने एक पत्र में लिखते हैं—'अगर भला चाहो तो घण्टा, सण्टा गंगा में बहाकर साक्षात् भगवान् नारायण की नरदेहधारी हरेक मनुष्य की पूजा करो—करोड़ों रुपये खर्च करके बनाये गये काशी और वृन्दावन के श्रीठाकुर के दरवाजे खुलते और बन्द होते रहते हैं। अब ठाकुर जी कपड़े बदलते हैं और अब ठाकुर जी भोग पाते हैं, और अब ठाकुर जी निपूतों के बाप-दादा के श्राद्ध में पिण्डा निगलते हैं और इधर जीते-जागते ठाकुर अन्न बिना, विद्या बिना मर रहे हैं।"

(पत्रावली भाग २, पृ० १९९)

आश्चर्य है कि उपदेश कुशल श्री रामकृष्ण तथा विवेकानन्द जीवन भर निरीह प्राणियों के रुधिर-मांस पर जीने वाली काली की उपासना करते रहे और अब उनके शिष्य अपने आश्रमों में श्री रामकृष्ण को ईश्वर का अवतार मानकर उनकी षोडशोपचार पूजा में सर्वात्मना प्रवृत्त है। इस प्रकार की पूजा के रहते मूर्तिपूजा की दार्शनिक व्याख्या को सुनकर ईसाइयों ने स्वामी विवेकानन्द के शिकागो भाषण की आलो-

चना इन शब्दों में की होगी—"सूक्ष्म तर्क व युक्ति के द्वारा मूर्तिपूजा की दार्शनिक व्याख्या करके वे पाश्चात्य जगत् की आंखों में धूल झोंकने के लिए उद्यत हुए हैं, क्योंकि जड़ के उपासक हिन्दू उक्त प्रकार की व्याख्या स्वप्न में भी नहीं सोच सकते।"

(विवेकानन्द चरित, पृ० १९३)

वेद

शिकागो में हुए प्रसिद्ध सर्वधर्म सम्मलेन के प्रसंग में स्वामी विवेकानन्द के जीवनी लेखक ने उस समय मंच पर उपस्थित प्रमुख धर्माचार्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है—

"On his (Vivekananda's) left and right were grouped the oriental delegates: P. C. Mazumdar of Brahma Samaj; Dharmapal, representing the Ceylon Buddhists; Gandhi, representing the Jains; Annie Besant of the Theosophical Society. With them sat Swami Vivekananda, who represented no particular sect, but the universal Religion of the Vedas." Bio. 118)

इससे विस्पष्ट है कि इस सर्वधर्म सम्मेलन (World Fellowship of Faith's Conference) में स्वामी विवेकानन्द ने किसी सम्प्रदाय विशेष का नहीं, वेदों के सार्वभौम धर्म का प्रतिनिधित्व किया था, क्योंकि उनकी मान्यता थी—

"The Cardinal features of the Hindu religion are founded on the meditative and speculative philosophy

and on the ethical teachings contained in the Vedas". (IV, 188)

हिन्दू धर्म के मुख्य सिद्धान्त वेदों में निहित ध्यान तथा गहन चिन्तन द्वारा निर्धारित दर्शन और नीतिशास्त्र पर आधारित हैं।

"To Vivekanand the religion of the Hindus, based upon the teachings of the Vedas, appeared adequate to create the necessary synthesis (between the East and the West." (Bio. 122)

विवेकानन्द जी के अनुसार वेदों पर आधारित हिन्दू धर्म पूर्व और पश्चिम में समन्वय करने के लिए काफी प्रतीत होता है।

स्वामी जी मठ में एक वैदिक कालिज आरम्भ करना चाहते थे। इस योजना पर विचार के समय—मृत्यु वाले दिन–

"What will be the good of studying the Vedas ?" Premananda asked.

"It will kill superstition", Swami Vivekananda said (Bio. 340)

स्वामी प्रेमानन्द ने पूछा–"वेदों का अध्ययन करने का क्या लाभ होगा ?"

स्वामी विवेकानन्द जी ने उत्तर दिया–'इससे अन्धविश्वासों का नाश होगा।'

वेदों की नित्यता के विषय में स्वामी जी की मान्यता थी—

"वेद नामक शब्दराशि किसी पुरुष के मुंह से नहीं निकली है। उसके साल और तारीख का अभी निर्णय नहीं हुआ है और न आगे चल कर ही होगा। हम हिन्दुओं के मतानुसार वेद अनादि और अनन्त

हैं। जगत् के अन्यान्य धर्म अपने शास्त्रों को यही कह कर प्रामाणिक सिद्ध करते हैं कि वे ईश्वर नामक व्यक्ति या पैगम्बर की वाणी हैं, पर हिन्दू कहते हैं, वेदों का कोई दूसरा प्रमाण नहीं है, वेद स्वतः प्रमाण हैं, क्योंकि वेद अनादि, अनन्त हैं, वे ईश्वरीय ज्ञानराशि हैं। वेद कभी लिखे नहीं गये, न कभी नष्ट हुए। वे अनादि काल से वर्तमान हैं। जैसे सृष्टि अनादि-अनन्त है, वैसे ही ईश्वर का ज्ञान भी। 'वेद' का अर्थ है ईश्वरीय ज्ञान की राशि। 'विद् धातु का अर्थ है जानना। (भारत में विवेकानन्द, पृ० २५)

"हिन्दू यह विश्वास करने को तैयार नहीं हैं कि वेदों का कुछ अंश एक समय में और कुछ अन्य समय में लिखा गया है। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि समग्र वेद एक ही समय उत्पन्न हुए थे अथवा उनकी सृष्टि कभी नहीं हुई, वे चिरकाल (सदा) से सृष्टिकर्ता के मन में विद्यमान थे।" (भारत में विवेकानन्द, पृ० १७५)

"सभी समय के लिए वेद ही अन्तिम ध्येय और प्रमाण हैं, और यदि किसी विषय में वेदों का पुराणों से मतभेद हो तो पुराणों के उस भाग को बिना किसी हिचकिचाहट के एकदम अस्वीकृत कर देना होगा। वेद सर्वकालीन, सर्वव्यापी और सार्वदेशिक हैं।" (जाति, संस्कृति और समाजवाद, पृ० १७)।

"वेदों को छोड़कर अन्य सारे शास्त्र युगभेद से बदलते रहते हैं। परन्तु वेदों का शासन नित्य है। अन्य शास्त्रों का शासन तो कालविशेष की सीमा के भीतर ही कार्य करता है।—वेद ही एकमात्र प्रमाण हैं। पुराणादि अन्यान्य शास्त्र वहीं तक ग्राह्य हैं जहां तक वे वेद के अविरोधी हैं।"

(स्वामी विवेकानन्द से वार्तालाप, पृष्ठ ६४)

"सब समय वेद ही हमारे चरम लक्ष्य और मुख्य प्रमाण रहे हैं।

यदि किसी तरह पुराणों का कोई हिस्सा वेदों के अनुकूल न हो तो निर्दयतापूर्वक उतने अंश का त्याग कर देना चाहिए।" (भारत में विवेकानन्द, पृ० ६५)।

कुम्भकोणम् में दिए गये भाषण में भी उन्होंने यही बात कही थी - "वेद चिरकालिक सत्य होने के कारण सदा समभाव में विद्यमान रहते है, किन्तु स्मृतियों की प्रधानता युग-परिवर्तन के साथ ही जाती रहती है।" (वही) श्रुति प्रामाणिकता का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा "यह शास्त्र का नियम है कि जहां श्रुति और परमाणु एवं स्मृति में मतभेद हो, वहां श्रुति के मत का ग्राह्य और स्मृति आदि के मत का परित्याग करना चाहिए।' (वही पृ० १७४) एक भाषण में उन्होंने कहा था – "पुराण, तन्त्र और अन्यान्य ग्रन्थसमूह—यहां तक कि व्यास सूत्र भी गौण हैं हमारे मुख्य प्रमाण वेद हैं। मन्वादि स्मृतियों और पुराणों का जितना अंश वेदों से मेल खाता है, उतना ही ग्रहण योग्य है। यदि वे बखेड़ा करें तो उन्हें निर्दयतापूर्वक छोड़ देना चाहिए। हमें यह सदा स्मरण रखना होगा। परन्तु भारत के दुर्भाग्य के कारण वर्तमान समय मे हम यह बिल्कुल भूल गये हैं। इस समय छोटे-छोटे ग्राम्य आचारों को उपनिषदों के उपदेश का आसन मिल गया है।"

(भारत में विवेकानन्द, पृ० ३१६)

"स्मृति, पुराण, तन्त्र वहीं तक ग्राह्य हैं जहां तक वे वेद का अनुमोदन करते हैं। ऐसा न होने पर वे ग्राह्य नहीं हैं। आजकल लोगों ने पुराण को वेद की अपेक्षा श्रेष्ठ समझ रखा है। मैं वह दिन शीघ्र देखना चाहता हूं जिस दिन प्रत्येक घर में शालिग्राम की मूर्ति के साथ आबाल, वृद्ध, वनिता वेद की पूजा करते दृष्टिगोचर होंगे।" (भारत में विवेकानन्द, पृ० ४६५)।

"पुराणों में ऐसी अनेक बातें हैं जो वेदों के साथ मेल नहीं खातीं। जैसे पुराणों में लिखा है कि कोई दस हजार वर्ष जीवित रहता है, कोई हजार वर्ष जीवित रहता है. किन्तु वेदों में लिखा है—शतायुर्वै पुरुषः'। इस मतभेद में वेद ही ग्राह्य हैं।" (भारत में विवेकानन्द, पृ० ४६५)।

हमारा धर्म व्यक्तिविशेष के ऊपर नहीं किन्तु सनातन सिद्धांतों पर प्रतिष्ठित है। कृष्ण के वचनों से वेदो की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती, किन्तु वेदों के अनुगामी थे, इसी से कृष्ण के वचन प्रमाण माने जाते हैं। कृष्ण वेद के प्रमाण नहीं हैं किन्तु वेद ही कृष्ण के प्रमाण है। कृष्ण का माहात्म्य यही है कि वेदों के जितने प्रचारक हैं, उनमें वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं। अन्यान्य ऋषियों के विषय में भी यही समझिये। हम आरम्भ से ही यह स्वीकार कर लेते हैं कि मनुष्यता की प्राप्ति के लिए जो कुछ आवश्यक है, उनका वर्णन वेदों में है।"

(भारत में विवेकानन्द, पृ० २०२)

"इस संसार में ऐसा कोई सत्य या विधि नहीं है, जो वेदों में न हो। हम आपको आह्वान करते हैं कि आप ऐसे सत्य को दिखायें जिसकी व्याख्या वेदों में न हो।"

(स्वामी विवेकानन्द से वार्तालाप, पृ० ४८)

"आर्यों की प्रत्येक विद्या का बीज वेद में विद्यमान है एवं उक्त किसी भी विद्या की प्रत्येक सज्ञा वेद से आरम्भ करके वर्तमान समय के ग्रन्थों में भी दिखाई जा सकती है।"

(चिन्तनीय बातें, पृ० ५६)

"समस्त देश, काल और पात्र में व्याप्त होने के कारण वेद का शासन अर्थात् वेद का प्रभाव देशविशेष, कालविशेष अथवा पात्रविशेष तक सीमित नहीं है। सार्वजनिक धर्म की व्याख्या करने वाला एक मात्र वेद ही है। अलौकिक ज्ञानराशि का सर्वप्रथम पूर्ण और अविकृत संग्रह होने के कारण, आर्यजाति के बीच में प्रसिद्ध वेद नामधारी चार

भागों में विभक्त अक्षरसमूह ही सब प्रकार से सर्वोच्च स्थान का अधिकारी है। समस्त जगत् का पूजार्ह है तथा आर्य एवं म्लेच्छ सबके धर्म ग्रन्थों की प्रमाण भूमि है।"

(चिन्तनीय बातें, पृ० १३)

स्वामी विवेकानन्द की यह भी मान्यता थी कि "उसका जो अंश लौकिक अर्थवाद, अथवा इतिहास सम्बन्धी बातों की विवेचना नहीं करता, वही अंश वेद है।" (चिन्तनीय बातें, पृ० १३) अर्थात् वे ब्राह्मणादि ग्रन्थों को वेद न मानकर केवल चार संहिताओं को ही वेद मानते थे।

अपने 'ज्ञानयोग' (पृष्ठ ७२) नामक ग्रन्थ में वेदों का सर्वोपरि महत्त्व बतलाते हुए स्वामी जी ने लिखा है— "वेद के द्वारा जगत् की सृष्टि हुई है। ज्ञान नाम से जो कुछ समझा जाता है, वह सब वेद में ही हैं। जिस प्रकार आत्मा अनादि और अनन्त है, उसी प्रकार वेद का प्रत्येक शब्द भी पवित्र और अनन्त है। सृष्टिकर्ता के समस्त मन का भाव ही मानों वेदों में प्रकाशित है। यह कार्य नीतिसंगत क्यों है? क्योंकि इसे वेद कहता है। यह कार्य अन्याय क्यों है? क्योंकि इसे वेद कहता है।"

वेदों का इतना प्रशस्तिगान करने के साथ विवेकानन्द जी, पता नहीं कैसे कहते हैं—

"By the Vedas I do not mean any particular books containing the words of a prophet or deriving sanction from a supernatural authority, but the accumulated treasure of spiritual laws discovered by various Indian seers in different times." (Bio. 122)

अर्थात् मेरा अभिप्राय किसी पुस्तक विशेष से नहीं है। वेद का अर्थ

है भिन्न-भिन्न समय में अनेक व्यक्तियों द्वारा अनुभूत आध्यात्मिक तत्वों का संचित कोश।

"मैं वेद का उतना ही अंश मानता हूं जितना युक्तिसंगत है। वेद के अनेक अंश तो स्पष्ट रूप से परस्पर विरोधी हैं।' (विवेकानन्द जी की कथायें, पृ० १२५)।

" वेदों में बहुत से ऐसे मन्त्र हैं जो ईश्वरप्रसूत नहीं माने जा सकते, क्योंकि वे मानव-जाति को प्राणिमात्र को पीड़ा पहुंचाने के लिए अनेक प्रकार के अशुद्ध कर्मों का विधान करते हैं।" (स्वामी विवेकानन्द से वार्तालाप, पृ० ४७)।

"कुछ मन्त्रों में तो हास्यास्पद कथाएं भी वर्णित हैं।" (भारत में विवेकानन्द, पृ० ९५)।

"वे (आर्य) यज्ञवेदी बनाते हैं और पशुबलि देकर उसके पके मांस का नैवेद्य इन्द्र को अर्पण करते हैं।"

(हिन्दू धर्म, पृ० ३१)

"वेद के संहिता भाग में अनन्त स्वर्ग का वर्णन है, जिस प्रकार ईसाइयों के धर्म ग्रन्थों में है।" (व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, पृ० ३९) "वेद के संहिता भाग में हम केवल स्वर्ग की (मोक्ष की नहीं) बात पाते हैं।" (ज्ञानयोग, पृ० २५४)।

मैक्समूलर

"The Swami was deeply affected to see maxmuller's love for India" 'I wish," he wrote enthusiastically, "I had a hundredth part of that love for my motherland. Endowed with an extraordinary, and at the same time an intensely active mind, he has lived

and moved in the world of Indian thought for fifty years or more, and watched the sharp interchange of light and shade in the interminable forest of Sanskrit literature with deep interest and heartfelt love, till they have sunk into his very soul and coloured his whole being. The Swami asked Maxmuller, "When are you coming to India ? All men there would welcome one who has done so much to place the thoughts of their ancestors in a true light." (Bio·192-93)

सारांश—स्वामी जी मैक्समूलर से इस हद तक प्रभावित थे कि मैक्समूलर के भारत प्रेम की तुलना में उन्हें स्वयं अपना देश प्रेम भी तुच्छ (उसके शतांश के बराबर) प्रतीत होता था। उन्हें (मैक्समूलर) को भारत में आने का निमन्त्रण देते हुए पूछा—"आप भारत कब आ रहे हैं ? यहां के लोग ऐसे महापुरुष का स्वागत करेंगे जिसने उनके पूर्वजों के विचारों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिए इतना प्रयास किया है।"

मैक्समूलर ने जो कुछ किया था उसके कुछ नमूने हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं—

मद्रास क्रिश्चियन सोसाइटी की ओर से प्रकाशित 'Vedic Hinduism' में मैक्समूलर ने लिखा था—'I remind you once again that the Vedas contain a great deal of what is childish and foolish." अर्थात् मैं एक बार फिर आपको याद दिलाता हूं कि वेदों में बहुत सी बचकाना और मूर्खतापूर्ण बातें भरी पड़ी हैं। कुछ भिन्न शब्दों में यही बात मैक्समूलर ने अपनी Chips from a German Workshop' (Ed. 1866, p 27) में लिखी

है—"A large number of Vedic hymns are childish in the extreme, tedious, low and common-place." अर्थात्—वैदिक सूक्तों की एक बड़ी संख्या बिल्कुल बचकानी, जटिल, निकृष्ट और अत्यन्त साधारण है। सन् १८८२ में 'India-what can it teach us?' में एक बार फिर मैक्समूलर ने लिखा—"That the Veda is full of childish, silly and monstrous conceptions, who would deny?" (Page 7) अर्थात् वेद बचकाना, मूर्खतापूर्ण और राक्षसवत् विकराल तथा नितान्त असंगत बातों से भरे हैं - इससे कौन इन्कार कर सकता है ?

वेद वास्तव में ऐसे हैं—यह सिद्ध करने के लिए मैक्समूलर ने वेदों का भाष्य किया। वेद के अनुवाद और अनुसन्धान कार्य में प्रवृत्त होने में मैक्समूलर का क्या उद्देश्य था—यह उसके अपनी पत्नी के नाम लिखे पत्र से स्पष्ट हो जाता है—"This edition of mine and the translation of the Veda will, hereafter, tell to a great extent on the fate of India. It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years". (Life and Letters of Frederick Maxmuller, Vol I, Chap. X V, Page 34)

अर्थात्—मेरा यह संस्करण और वेद का अनुवाद भारत के भाग्य को दूर तक प्रभावित करेगा। यह (वेद) उनके धर्म का मूल है वह मूल कैसा है, यह दिखा देना ही गत तीन हजार वर्षों में उससे उत्पन्न होने वाली सब बातों को समूल उखाड़ फेंकने का एकमात्र उपाय है।

भारत सचिव (Secretary of State for India) के नाम १६

दिसम्बर १८६८ को लिखे अपने पत्र में मैक्समूलर ने लिखा था -
"The ancient religion of India is doomed. Now, if Christianity does no step in, whose fault will it be." Ibid, Vol. I, Chap. XVI, P, 378) अर्थात् 'भारत का प्राचीन धर्म नष्टप्राय है। अब यदि ईसाइयत उसका स्थान नहीं लेती तो यह किसका दोष होगा ?

मैक्समूलर के प्रयासों की सराहना करते हुए उनके घनिष्ठ मित्र ई०बी० पुसे ने अपने एक पत्र में लिखा—"Your work will mark a new era in the efforts for the conversion of India." अर्थात् 'आपका कार्य भारत को ईसाई बनाने की दिशा में नवयुग लाने वाला होगा।'

स्पष्ट है कि मैक्समूलर ने लार्ड मेकाले के निर्देशन में भारत को ईसाई बनाने के उद्देश्य से उसके साहित्य और इतिहास को विकृत रूप में प्रस्तुत करने के लिए किया। इसी जघन्य कार्य के लिए स्वामी विवेकानन्द भारत में आमन्त्रित कर उसका अभिनन्दन करना चाहते थे। केवल इसलिए कि उसने श्री रामकृष्ण परमहंस की जीवनी से सम्बन्धित दो पुस्तकों की रचना की थी...1. Ramakrishna, His life and sayings 2. A Real Mahatman. मानो इसका बदला चुकाने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने भी मैक्समूलर का स्तवन करते हुए यहां तक लिख डाला कि "कभी-कभी मुझे ऐसा अनुमान होता है कि स्वयं सायणाचार्य ने अपने भाष्य का पुनरुद्धार करने के लिए मैक्समूलर के रूप में जन्म लिया है।"(विवेकानन्द जी के संग में, पृ० ६१)।

वस्तुत: अपने गुरु के प्रति वे पूर्णत: अन्धभक्त थे। उनके विषय में सोचते, बोलते या लिखते समय वे बुद्धि और तर्क को ताक पर रख देते थे। वे चाहते थे कि मैक्समूलर उनकी (रामकृष्ण की) जीवनी

लिखें। एक दिन उनके गुरुभाई स्वामी शारदानन्द ने कहा...'आप स्वयं क्यों नहीं लिखते ?' स्वामी विवेकानन्द ने उत्तर दिया..."I have such deep feeling for the Master that it is impossible for me to write about him for the public. If I were to write about him I would prove quoting from philosophies, the scriptures and even the holy books of the Christians that Ramakrishna was the greatest of all prophets born in the world. That would have been too much for the old man." (Bio. 193-94)

अर्थात्—गुरुवर के प्रति मेरे विचार इतने अधिक भावुकतापूर्ण हैं कि मेरे लिए उन्हें सार्वजनीन रूप में व्यक्त करना असंभव है। यदि मैं उनके विषय में लिखूंगा तो दर्शनों, धर्मशास्त्रों—यहां तक कि ईसाइयों के धर्मग्रन्थों (जो रामकृष्ण के जन्म से बहुत पहले लिखे गये थे) से भी उद्धरण देकर सिद्ध करूंगा कि संसार में जितने भी धर्मप्रवर्तक पैदा हुए हैं, उनमें श्री रामकृष्ण सबसे महान् थे, और यह उस बूढ़े (मैक्समूलर) के लिए असह्य होगा।

हिन्दू धर्म

"From the high spiritual flight of the Vedanta Philosophy of which the latest discoveries of science seem like echoes, to the low ideas of idolatory with its multifarious mythology, the agnosticism of the Buddhists and the atheism of the Jains, each and all have a place in the Hindu's religion," (1,6,)

"विज्ञान की अधुनातन मान्यताएं जिसकी प्रतिध्वनिमात्र हैं, उस

वेदान्त की उच्चतम कल्पनाओं से लेकर निकृष्टतम मूर्तिपूजा तथा उससे जुड़ी अनेकानेक पौराणिक गाथाओं, बौद्धों के अज्ञेयवाद तथा जैनों के नास्तिकवाद आदि—सभी के लिए हिन्दू धर्म में स्थान है।" संसार भर में स्वामी विवेकानन्द अद्वैत के प्रचारक के रूप में विख्यात हैं। परन्तु वे कहते हैं—

"Notwithstanding the differences and controversies existing among various sects, there are in them several grounds of unity. First, almost all of them admit the existence of three things, three entities, Ishwar, Atman and the Jagat. Ishwar is he who is eternally creating preserving and destroying the universe. Except the Sankhyas, all others believe in this, Then the doctrine of the Atman and the incarnation of the soul. It maintains that innumerable individual souls having taken body after body again and again, go round and round in the wheel of birth and death according to their karmas, this is the doctrine of rebirth. Then there is this Jagat or universe without beginning and without end. Though some (Advaitavadins) hold these three as different phases of one only and some others (Dvaitavadins) as three distinctly three different entities, and others again in various other ways, yet they are all unanimous in believing in these three." (III,459-60)

विभिन्न सम्प्रदायों में वर्तमान भेदों तथा विवादों के होते हुए भी

उनमें कुछ समानताएं हैं। पहली बात तो यह है कि वे सभी ईश्वर, जीव और जगत् इन तीन तत्त्वों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। इनमें ईश्वर सदा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कारण है। सांख्यों को छोड़ कर (वस्तुत: सांख्य भी निरीश्वरवादी नहीं हैं) सभी का इसमें विश्वास है। इसके बाद जीवात्मा और उसके शरीर धारण करने का सिद्धांत आता है। इसके अनुसार असंख्य जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार बार-बार शरीर धारण करते हुए जन्म-मरण के सदा आवर्तमानचक्र में प्रवृत्त रहते हैं। यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त है। तीसरी सत्ता जगत् है जिसका न आदि है और न अन्त है। कुछ (अद्वैतवादी) इन तीनों को एक ही तत्त्व के विभिन्न् रूप मानते हैं, जबकि दूसरे उन्हें तीन स्वतन्त्र तत्त्वों के रूप में स्वीकार करते हैं और कुछ अन्य दूसरे विभिन्न रूपों में मानते हैं। फिर भी इन सत्ताओं में विश्वास के नाते सब एक मत हैं।

नारी

"Nowhere in the world are women like those in this country (America). How pure, independent, self-relying and kindhearted. It is the women who are the life and soul of this country. All learning and culture are centred in them—" "They are Lakshmi the Goddess of fortune, and beauty and Saraswati, the Goddess of Learning and virtue." (Bio. 142)

अमरीका के समान स्त्रियां संसार भर में नहीं हैं...कितनी पवित्र, स्वतन्त्र, आत्मनिर्भर और दयालु हृदय। ये स्त्रियां ही इस देश की आत्मा और उसका जीवन हैं। वे ही उसकी सारी विद्या और संस्कृति का केन्द्र हैं—सौन्दर्य में वे सौभाग्य की देवी लक्ष्मी के समान हैं और गुणों में विद्या की देवी सरस्वती के समान हैं।

"I should very much like our women to have your intellectuality, but not if it must be at the cost of purity. Intellectuality is not the highest good. Morality and spirituality are the things for which we strive Our women are not so learned, but they are more pure."

"Your men bow and offer a chair, but in another breath they offer compliments. They say, Oh madam ! how beautiful are your eyes ! What right have they to do this ? How dare a man venture so far and how can your women permit it ?"

"No sooner are a young man and a young woman left alone than he pays compliments to her, and perhaps before he takes a wife he has courted two hundred women" (V, 412-13)

मैं अपने देश की नारियों को आपकी तरह विदुषी देखना चाहूंगा, किन्तु उनकी पवित्रता को खोकर नहीं। वैदुष्य सर्वोच्च गुण नहीं है। नैतिकता और आध्यात्मिकता वे गुण हैं जिनके लिए हम प्रयत्नशील हैं। हमारी नारियां इतनी विदुषी नहीं हैं, पर वे अधिक पवित्र हैं।

आपके यहां के पुरुष महिला को नमन करते हैं और आसन प्रस्तुत करते हैं। परन्तु दूसरे ही सांस में उसके रूप की प्रशंसा करने लगते हैं। वे कहते हैं—मैडम, आपकी आंखें कितनी सुन्दर हैं। उन्हें ऐसी बातें करने का क्या अधिकार है ? कोई पुरुष इस हद तक कैसे जा सकता है और कैसे आपकी स्त्रियां इसकी अनुमति देती हैं ?

ज्यों ही एक युवक और युवती को एकान्त में छोड़ा जाता है त्यों

ही पुरुष उसकी प्रशंसा में प्रवृत्त हो जाता है और किसी एक को पत्नी स्वीकार करने से पहले दो सौ नारियों से सम्बन्ध स्थापित कर चुका होता है।

In the west, the women did not very often seem to me to be women at all, they appeared to be quite the replicas of men. Driving vehicles, drudging in offices, attending schools, doing professional duties ! In India alone the sight of feminine modesty and reserve soothes the eye.'' (VI. 491)

पश्चिम में तो मुझे नारी, नारी रूप में ही दिखाई नहीं पड़ती। वह पुरुष का ही प्रतिरूप जान पड़ती है। वह गाड़ी चलाती, कार्यालयों में काम करती, स्कूलों में पढ़ाती और इसी प्रकार के अन्य व्यावसायिक कार्य करती मिलती है। स्त्रियोचित नम्रता तथा मर्यादा का दर्शन तो भारत में ही मिलता है।

खण्डन

"समाज पर अग्निमय अभिशापों की वर्षा कर, प्रत्येक आचार-विचार की कड़ी आलोचना द्वारा किसी प्रकार का सुधार सम्भव नहीं है। इसके लिए तो असीम प्रेम तथा धैर्य की आवश्यकता है।" (विवेकानन्द चरित, पृष्ठ १३३) पर दूसरे ही सांस में वे कहते हैं—

"संसार को समय समय पर कठोर समालोचना की भी आवश्यकता होती है।" (हिन्दू धर्म, पृ० ५६) प्रत्येक कलुषित असत्य के प्रति मैं मधुर और अनुकूल नहीं बन सकता हूं।" (पत्रावली भाग २, पृ० ७१) "मैं मधुर बनने का भरसक प्रयत्न करता हूं, परन्तु जब अन्तरस्थ सत्य से समझौता करने का अवसर आता है, तब मैं रुक जाता हूं।"

(पत्रावली भाग २, पृ० ७०) "हमारे बहुतेरे कुसंस्कार हैं, हमारी देह पर बहुत से काले धब्बे और हानिकारक घाव हैं—उन्हें काट और चीर फाड़ कर एक दम निकाल देना होगा।" (भवानीलाल १६६) "नहीं, समझौता नहीं, लीपापोती नहीं, सड़े गले मुर्दों को फूलों से न ढको" (विवेकानन्द चरित, पृष्ठ ३७६) "यदि हम देखें कि परम्परा प्राप्त आचार नियम समाज के विकास व परिपुष्टि के मार्ग में विघ्न उत्पन्न कर रहे हैं, यदि वे हमारे विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति में रोड़े के सदृश हैं तो हम जितना शीघ्र उनका त्याग कर दें, उतना ही अच्छा है।" (विवेकानन्द चरित, पृ० १६८) "पुरातन पौराणिक घटनाओं को रूपक के आकार में चिरस्थाई करने की चेष्टा करने से और इस प्रकार उन्हें महत्त्व देने से कुसंस्कार की उत्पत्ति होती है, और यह सचमुच दुर्बलता है। असत्य के साथ कभी भी और किसी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहिए। सत्य का उपदेश दो और किसी प्रकार से भी असत्य के पक्ष में युक्ति देने की चेष्टा मत करो।" (देववाणी, पृष्ठ १६१)।

"He (Swami Vivekananda) poured vitals of wrath on the priesto superstition, hypocritical educated classes whose God is the kitchen and whose religion is 'don't touchism'."

एक उदाहरण—"उन पाखण्डी पुरोहितों को जो सदैव उन्नति के मार्ग में बाधक होते हैं, निकाल बाहर करो क्योंकि उनका कभी सुधार नहीं होगा।" (पत्रावली भाग १, पृ० ६५) "पौरोहित्य की बुराइयों को ऐसा धक्का देना होगा कि वे चकराती हुई एकदम एटलांटिक महासागर में जा गिरें।" (वही पृ० १५४)।

पश्चाद्वाक्

स्वामी विवेकानन्द को हिन्दू धर्म तथा भारतीय संस्कृति के उन्नायक तथा प्रचारक के रूप में सभी जानते हैं। उनके प्रचार के फलस्वरूप देश-विदेश में सर्वत्र भारत का गौरव बढ़ा, इसके लिए देश की जनता सदा उनकी ऋणी रहेगी। परन्तु 'All that glitters is not gold'—हर चमचमाती वस्तु सोना नहीं होती। स्वामी जी के सुदर्शन व्यक्तित्व तथा वाग्मिता से अभिभूत जनमानस ने कभी उनके भीतर गहराई में झांकने का प्रयास नहीं किया। श्री रामकृष्ण परमहंस के प्रति अन्धभक्ति तथा परम्परागत संस्कारों के कारण, कालान्तर में बुद्धिवादी हो जाने के पर भी, वे अपने को अनेक प्रकार की मिथ्या धारणाओं से सर्वथा मुक्त नहीं कर सके थे। इस दोहरे व्यक्तित्व के कारण, जाने-अनजाने, उनकी कथनी और करनी में अनेक प्रकार की विसंगतियां आ गईं जिनकी ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया।

स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा संचालित अद्वैत आश्रम कलकत्ता से प्रकाशित 'Teachings of Swami Vivekananda' के सम्पादक Christopher Isherwood ने अपनी भूमिका में लिखा है—"Swami Vivekananda was the last person to worry about consistency. He always spoke extempore, fired by the circumstances of the moment, addressing himself to the condition of a particular group of hearers. That was his nature and he was supremely indifferent if his words of today contradicted those of yesterday. अर्थात् स्वामी विवेकानन्द संगति की चिन्ता नहीं करते थे। वे सदा पूर्व कल्पना के बिना, उपस्थित श्रोताओं की अपेक्षा को ध्यान में रख कर समयोचित बोलते थे। यदि उनके आज के कथन से कल की बात

कटती थी तो वे उसे सहज भाव से लेते थे।

पिछले पृष्ठों में हमने स्वामी जी के विचारों को उन्हीं के लेखों तथा वक्तव्यों से ज्यों का त्यों उद्धृत कर दिया है जिससे सुधीजन स्वतन्त्र बुद्धि से उन पर विचार कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके समाज का मार्गदर्शन कर सकें। इसी कारण हमने अधिकांश पर अपनी टिप्पणी देने की धृष्टता नहीं की है। इस प्रबन्ध को लिखने में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में डा० भवानीलाल जी से काफी सहायता ली गई है एतदर्थ मैं उनका विशेषतः आभारी हूं।

दयानन्द का प्रादुर्भाव

भारत के पिछले एक हज़ार वर्ष के इतिहास में स्वामी दयानन्द अकेले ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने इस देश की समस्याओं पर समग्रता से विचार किया। सतही तौर पर न देख कर उनके भीतर प्रवेश करके और सूक्ष्म दृष्टि से देख कर उनका विश्लेषण किया और देश और समाज के अतीत में झांक कर वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में उसके भविष्य का निर्माण करने का प्रयास किया।

सन् १९११ की जनसंख्या के अध्यक्ष (Census Commissioner) मिस्टर ब्लण्ट ने आर्य समाज की आलोचना करते हुए लिखा था—

The Arya Samaj doctrine has a patriotic side. The Arya doctrine and Arya education alike sing the glories of ancient India and by so doing arouse a feeling of national pride in its disciples who are made to feel that their country's history is not a tale of humiliation. Politics and patriotism are not

synonymous but the arousing of an interest in national affairs is a natural result of arousing national pride," Census Report of 1911, Vol. XV, Part-I, Chap, IV. Page 135"

आर्य समाज के सिद्धान्तों में स्वदेश प्रेम की प्रेरणा है। आर्य सिद्धान्त और आर्य शिक्षा दोनों समान रूप से भारत के प्राचीन गौरव के गीत गाते हैं और ऐसा करके अपने अनुयायियों में राष्ट्रीय गौरव की भावना को जागृत करते हैं। इस शिक्षा के परिणाम स्वरूप वे समझते हैं कि हमारे देश का इतिहास कोई पराभव की कहानी नहीं है। देश भक्ति और राजनीति पर्यायवाची नहीं हैं, किन्तु राष्ट्रीय कार्यों में प्रवृत्ति का होना राष्ट्रीय भावना के उभरने का स्वाभाविक परिणाम है।

मिस्टर ब्लण्ट के कथन की यथार्थता को जानने के लिए सत्यार्थ प्रकाश में उल्लिखित दयानन्द के इन शब्दों पर ध्यान देना काफी होगा।

"यह आर्यावर्त ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा देश नहीं है। इसीलिए इस भूमि का नाम स्वर्णभूमि है, क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है। परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारस-मणि है कि जिसको छूते ही लोहे रूपी विदेशी स्वर्ण अर्थात् धनी हो जाते हैं। सृष्टि से लेके पांच सहस्र वर्षों से पूर्व पर्यन्त आर्यों का सार्व-भौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि राज्य था। अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे।"

मिस्टर ब्लण्ट के अनुसार इस भावना के जागृत होने का यह परिणाम हुआ कि लोगों में अपने खोये वैभव को फिर से पाने की

लालसा पैदा हुई। इस बात से कौन इन्कार कर सकता है कि देश की स्वाधीनता की लड़ाई में आर्य समाजियों ने सबसे अधिक बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया।

किसी भी मामले मे विदेशियों के सामने सिर झुकाना दयानन्द को सहन नहीं था। वह लिखते हैं—"जब अपने देश में सब सत्य विद्या, धर्म और परमयोग की सब बातें थीं और अब भी हैं, तब विचारिए कि थियोसोफिस्टों को एद्देशवासियों के मत में मिलना चाहिए या आर्यावर्तियों को थियोसोफिस्ट होना चाहिए।"

दयानन्द के देश प्रेम के सामने अमेरिका से प्रेरणा पाने और हर बात में वहां के नर-नारियों के गुणों का बखान करने वाले विवेकानन्द की देशभक्ति की भावना कितनी फीकी है। वास्तव में स्वदेशी भाषा, भाव, साहित्य और संस्कृति के प्रेम के बिना स्वदेश प्रेम बिल्कुल थोथा और निर्जीव है। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेशी का प्रयोग करने की ज़ोरदार प्रेरणा करने वाला भी दयानन्द पहला व्यक्ति था। मिस्टर ब्लण्ट ने आगे लिखा है—

"Dayanand was not merely a religious reformer, he was also a great patriot. It would be fair to say that with him religious reform was a mere means to national reform."

दयानन्द केवल धार्मिक सुधारक ही नहीं थे, वे एक बहुत बड़े देश भक्त भी थे। यह कहना ठीक ही होगा कि उन्होंने धार्मिक सुधार को राष्ट्रीय सुधार के साधन रूप में ही अपनाया था।

मिस्टर ब्लण्ट ने बड़े पते की बात कही है। इसमें सन्देह नहीं कि दयानन्द ने पाखण्डों और परस्पर विरोधी मतों का खण्डन इस लिए

किया कि इनके रहते हुए "परस्पर एकमत, एकता, मेल मिलाप या सद्भाव न रह कर ईर्ष्या, द्वेष, विरोध मतभेद और लड़ाई झगड़ा ही होगा' दयानन्द ने बड़े दुख के साथ लिखा—"यदि ऐसे पाखण्ड न चलते तो आर्यावर्त की दुर्दशा क्यों होती ?" दयानन्द ने सबसे तीव्र और अधिक खण्डन मूर्ति पूजा का किया, यह विश्वविदित है। इस प्रकरण में उन्होंने १६ युक्तियां दी हैं जिनमें से अधिकांश का सम्बन्ध मूर्ति पूजा के कारण देश को होने वाली हानियों से है।

ब्रह्म समाज के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

"इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है। बहुत से आचरण ईसाइयों के लिए हैं। अपने देश की प्रशंसा और पूर्वजों की बड़ाई करना तो दूर रहा, उसके स्थान में भरपेट निन्दा करते हैं। ब्रह्मादि ऋषियों का नाम भी नहीं लेते, प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई विद्वान् ही नहीं हुआ। आर्यावर्तीय लोग सदा से मूर्ख ही चले आये हैं, उनकी कभी उन्नति नहीं हुई।" इन लोगों की भर्त्सना करते हुए वह लिखते हैं कि "भला जब आर्यावर्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी का अन्न, जल, खाया-पिया, अब भी खाते-पीते हैं, तब अपने माता पिता पितामह आदि के मार्ग को छोड़ कर इनका एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और बुद्धिकारक काम क्यों कर हो सकता है ?"

कितने स्वदेशाभिमानी थे दयानन्द —

यहां पर दयानन्द ने ब्रह्मसमाजियों के विदेशी मत ईसाइयत की ओर झुकाव होने के कारण ही उन्हें इतना फटकारा है। शायद

इस और ऐसी ही अन्य समीक्षाओं के कारण १९०१ में जनसंख्या के अध्यक्ष मिस्टर बर्न ने लिखा था —

' Dayanand feared Islam and Christianity because he considered that the adoption and adapatation of any foreign creed would endanger the national feelings he wished to foster.'

दयानन्द को आशंका थी कि इस्लाम और ईसाइयत जैसे विदेशी मतों के अपनाने से देशवासियों की राष्ट्रीय भावनाओं को जिन्हें वह जागृत करना चाहते थे, ठेस पहुंचेगी।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारी दासता की बेड़ियों को सुदृढ़ करने में ईसाइयत ने अंग्रेजों के कन्धे से कन्धा मिला कर काम किया है। जब तक किसी देश के लोगों में स्वाभिमान की भावना बनी रहती है तब तक विदेशी शासन चिरस्थायी नहीं हो पाता। इसी भावना को नष्ट करने के लिए ईसाइयत ने प्रयत्न किया और भारतीयों को जंगली बता कर उनमें हीनता की भावना का संचार किया। उसी समय दयानन्द ने अपनी वाणी और लेखनी द्वारा उनके सर्वश्रेष्ठ होने की घोषणा कर दी।

इस्लाम के इतिहास से तो सभी लोग परिचित हैं। मुसलमान आक्रमणकारी के रूप में इस देश में आये और लगभग सात सौ वर्ष तक उन्होंने यहां शासन किया। यह ठीक है कि भारत के मुसलमानों में अधिसंख्य इसी देश के रहने वाले हैं। किन्तु उन्होंने कभी किसी मुसलमान शासक का उसके विदेशी होने के कारण विरोध नहीं किया। इतिहास पूरी तरह इस बात का साक्षी है। मुसलमानों की यह मनोवृत्ति आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। सच तो यह है कि कट्टर से कट्टर देशभक्त भी मुसलमान होते ही देशद्रोही बन जाता है। बड़े से बड़े

राष्ट्रवादी मुसलमान के हृदय में जो आदर भाव विदेशी आक्रमण-कारी महमूद गज़नवी, मुहम्मद गौरी और बाबर आदि के लिए है उस का शतांश भी राम, कृष्ण, प्रताप और शिवा आदि के लिए नहीं है। भारत के मुसलमान यह जानते हुए भी कि उन्होंने स्वयं इस देश पर एक दिन भी शासन नहीं किया, विदेशी मुस्लिम शासकों पर गर्व करते हैं। देश की स्वाधीनता के लिए लड़ी गई लड़ाई में मुसलमानों का योगदान आटे में नमक के बराबर भी नहीं है।

स्वामी दयानन्द इस बात को पूरी तरह जानते थे। मुसलमानों को देशद्रोही से देश भक्त बनाने के लिए ही उन्होंने उनको हिन्दू बनाना आवश्यक समझा। उनका शुद्धि आन्दोलन विशुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन था, मुसलमानों तथा ईसाइयों का भारतीयकरण। भारत का हित इसी में है कि जो ईसाई और मुसलमान बन चुके हैं उन्हें शुद्ध करके वैदिक आर्य बनाया जाए और मानवता का हित इसमें है कि वह असत्य और अज्ञान का परित्याग करके सत्य सनातन वैदिक धर्म को अपनायें। विवेकानन्द की विचारधारा निश्चय ही इसमें बाधक है और देश के इस्लामीकरण तथा ईसाइयत के प्रचार में सहायक है। देश भक्ति के लिए उसमें कोई स्थान नहीं है।

विद्यानन्द सरस्वती
डी० १४/१६,माडल टाउन, दिल्ली

ART PUSTAKALAY

सार्वदेशिक प्रेस, पटौदी हाऊस दरियागंज नई दिल्ली-२